सप्तम अध्याय

"साधनात्मक पक्ष"

[खण्ड – ब]

"योग"

दर्शन के दो पक्ष सिद्धान्त और साधना होते हैं । दर्शन तत्व का सैद्धान्तिक रूप दर्शन शास्त्रों में और व्यावहारिक रूप जीवन में साधना द्वारा विकसित होता है अतः दर्शनों की तात्त्विक रक्षा शास्त्रों की अपेक्षा साहित्य में ही अधिक होती है ।

सन्त द्वय नामदेव और कबीर की दार्शनिक विचारधारा की सैद्धान्तिक पक्ष का विगत अध्यायों में विवेचन किया गया । इस अध्याय में साधना पक्ष पर विचार किया जायेगा ।

परम्परा

पारंपरिक दृष्टि से भारतीय धर्म साधना दो धाराओं में विकसित हुई ––– निवृत्तिमूलक और प्रवृत्तिमूलक । भारतीय धर्म साधना के ज्ञान, कर्म, योग तथा भक्ति इन चार मार्गों में से निवृत्तिमूलक साधना ज्ञान और योग प्रधान रही और प्रवृत्तिमूलक साधना में कर्म और भक्ति को प्राधान्य मिला ।

सन्त काव्य की दार्शनिक चेतना का अध्ययन करने पर यह कह सकते हैं कि सन्त साधना प्रवृत्तिमूलक है और सन्त-साहित्य में परम्परागत साधनाओं का समन्वित और सहजरूप ग्रहण किया गया और जिनमें से योग और भक्ति का स्वर प्रमुख रूपेण मुखरित हुआ । उस योग और भक्ति की प्रतिष्ठा ज्ञान के वितान में हुई अतः उनकी भक्ति निर्गुण भक्ति कहलाती है ।

इन सन्त कवियों का उद्देश्य स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति करना था, वे जीवन भर विविध साधना पद्धतियों के प्रयोग व परीक्षण करते रहे अतः इनकी साधना "आत्मविचार की साधना कही जाती है।"[1] जिसमें अनेक परम्परागत साधनाओं का समन्वय हुआ ।

योग और भक्ति का सम्बन्ध

वास्तव में योग और भक्ति भारतीय साधना क्षेत्र के एक दूसरे के पूरक एवं दो समानान्तर मार्ग हैं अतः वैदिक वाङ्मय से लेकर हिन्दी के भक्तिकाल तक उनकी सन्निकटता दिखाई देती है । योग और भक्ति एक दूसरे से सदा संबद्ध रहे हैं ।

वैदिक युग में यज्ञ और कर्मकांड की सघनता होते हुए भी भक्ति, ज्ञान व योग के तत्व मिलते हैं । वैदिक मंत्रों में यज्ञ सम्बन्धी सूक्तों में भक्ति भावना का बीज है ।

उपनिषदों में ज्ञान तत्त्व की प्रधानता होने पर भी भक्ति और योग को मान्य किया है । उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान को ही परमलक्ष्य माना गया है । उपनिषद प्रणीत यह ज्ञानमार्ग ही आगे चलकर दो भिन्न पगडंडियों में बंट गया उनमें से एक योग और दूसरी भक्ति की ओर चली ।[2]

श्रीमद्भगवद्गीता में योग ही कर्मयोग और ज्ञानयोग में रूपान्तरित हुआ । भगवान् कृष्ण योगी और योगेश्वर कहे जाते हैं । पुराणों की भी योग और भक्ति दोनों में आस्था थी । भक्ति के महान् ग्रन्थ श्री महापुराण श्रीमद्भागवत में ज्ञान और कर्म की चर्चा के साथ भक्तियोग व अष्टांगयोग का निर्देश किया है । भागवतकार व्यास ने नारद, देवहूति, भीष्म और ध्रुव आदि

---

1. आचार्य परशुराम चतुर्वेदी - कबीर साहित्य की परख - पृ. 96.
2. डा॰ शिवशंकर शर्मा - भक्तिकालीन हिन्दी - साहित्य में योग - भावना - पृ॰ 13।

के प्रसंगों में योग और भक्ति का विशद वर्णन किया है,[1] पर योग की अपेक्षा भक्ति को सरल और सुगम साधन कह श्रेष्ठ माना है । भागवत का मूल लक्ष्य ही भक्तितत्त्व की श्रेष्ठता का प्रतिपादन करना था अतः उन्हें भक्ति-संवलित योग या भक्तियोग को श्रेष्ठ माना है । शाण्डिल्य भक्तिसूत्र के अनुसार योग मुख्यतः ज्ञान का अंग होते हुए भी वह भक्ति से सम्बद्ध माना है ।[2] योग को ज्ञान और भक्ति दोनों का साधन माना है ।[3]

इस प्रकार योग और भक्ति की इस समन्वित परम्परा में मध्यकालीन धर्म साधना को प्रभावित करनेवाले अनेक सम्प्रदायों और आचार्यों का उल्लेख भी इसकी पुष्टि में सहायक होगा ।

योग और भक्ति समन्वित सम्प्रदाय

भक्ति दर्शन के पुनरुत्थापक चार महान् आचार्य श्री रामानुजाचार्य, निम्बार्काचार्य, मध्वाचार्य और वल्लभाचार्य थे जिनमें से रामानुजाचार्य (1073-1194) की देशव्यापी शिष्यमण्डली के अन्तर्गत विक्रम की 14 वीं शताब्दी में स्वामी रामानन्द का प्रादुर्भाव हुआ जो अपने समय के भक्ति आन्दोलन के बड़े प्रभावशाली नेता और योग विद्या के मर्मज्ञ थे ।[4] इन्होंने अपनी पुस्तक "सिद्धान्त पंचमात्रा" में योग और प्रेम का वर्णन किया है । जिसमें शून्य, ध्यान, झन्कार (अनाहतनाद) आदि योग परक संकेत तथा योगी जीवन सम्बन्धी निर्देशों इन्द्रिय-निग्रह, तुलसी की माला, अर्घ्य चरणामृत, नाम स्मरण आदि के वर्णन द्वारा उनकी योग व भक्ति समन्वित धारणा का परिचय प्राप्त होता है ।

---

1. डा० शिवशंकर शर्मा - भक्तिकालीन हिन्दी - साहित्य में योग - भावना - पृ० 132 - 139
2. शाण्डिल्य भक्तिसूत्र - 19, 20 सूत्र
3. - वही - सूत्र - 17
4. नाभादास कृत भक्तमाल - पृ० 30

इन्हीं की शिष्य परम्परा में ईसा की 15 वीं शती में स्वामी रामानन्द ने जिस उदार भक्तिमार्ग का प्रवर्तन किया उनकी शिष्य परम्परा में योगी, वैरागी, तपस्वी भी थे । रामानन्दी सम्प्रदाय के अनुयायियों को भी योगियों के सदृश "अवधूत" ही कहा जाता है । रामानन्दी वैरागियों की दैनिक जीवनचर्या से लक्षित होता है कि इस भक्ति सम्प्रदाय में भी योग-भावना विद्यमान थी ।[1] इन्हीं रामानन्द की शिष्य परम्परा में हमारे आलोच्य कवि सन्त कबीर की साधना पद्धति भी योग व भक्ति समन्वित ही थी ।

इस दृष्टि से दक्षिण के प्रमुख आचार्य नाथमुनि भी उच्च कोटि के योगी व भक्त थे इनकी "योगरहस्य" व "न्यायतत्व" नामक रचनाएं इसका प्रमाण है । उत्कल के भक्ति विकास पर दृष्टि डालने पर वैष्णव धर्म के पांच वैष्णव जिन्हें "पंचसखा" कहा जाता है वे भावुक, विचारशील, भक्त होने के साथ योगसाधक भी थे ।[2]

महाराष्ट्र के भक्ति आन्दोलन का विहंगावलोकन करने पर चक्रधर द्वारा प्रवर्तित मानभाव या महानुभाव पन्थ में नाथों का ज्ञान और भक्ति दोनों का अद्भुत सम्मिलन है ।

हमारे आलोच्य कवि नामदेव महाराष्ट्र के भक्ति प्रधान वारकरी सम्प्रदाय के अग्रणी माने जाते हैं । इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन नाथपन्थी परम्परा में दीक्षित सन्त निवृत्तिनाथ, ज्ञानदेव ने किया । यह एक ऐतिहासिक सत्य है कि गोरखनाथ के शिष्य गहिनीनाथ या गैनीनाथ से कृष्णभक्ति में दीक्षित होकर निवृत्तिनाथ ने अपने भाई-बहिनों ज्ञानदेव, सोपानदेव तथा भगिनी मुक्ताबाई को दीक्षा दी ।[3] सन्त ज्ञानदेव सहजसिद्ध योगी थे । सन्त निवृत्तिनाथ के उपदेशों में योग और भक्ति का सामंजस्य स्पष्ट दिखाई देता है ।

- -

1. डा॰ पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल - योग प्रवाह - पृ॰ 172
2. डा॰ बलदेव उपाध्याय - भागवत सम्प्रदाय - पृ॰ 535
3. आचार्य विनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ॰ 81

वारकरी सम्प्रदाय के उपास्यदेव श्री विट्ठल की मूर्ति के माथे पर शिवलिंग का होना शैवों और वैष्णवों के मिलन का परिचायक होने के साथ योग और भक्ति के समन्वय का सूचक भी है।

साहित्यिक परम्परा की दृष्टि से भी सिद्ध साहित्य, योग-साधना प्रधान नाथपन्थ और सन्त साहित्य एक ही विचारधारा की तीन परिस्थितियाँ हैं।[1]

इस तरह मध्यकालीन धर्म साधना के क्षेत्र में योग और भक्ति समन्वित मार्ग ही प्रशस्त था।[2] गत पृष्ठों में हम कह चुके हैं कि नागपंथ गुरु परम्परा से नाथपन्थी योगी तथा शिष्यपरम्परा से भक्त थे और सन्त कबीर गुरु परम्परा से प्रधानतः भक्त और जाति परम्परा से मुख्यतः योगविरक्त थे। अतः उनके साहित्य में भी योग और भक्ति की समन्वित परम्परा का निर्वाह स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

अतः डा॰ शिवशंकर शर्मा के शब्दों में "यदि योग साधना के मूल उपकरण ज्ञान और शुद्ध चिन्तन हैं तो भक्ति का मुख्य आधार तन्मयता और इष्ट के प्रति सच्ची लगन अतः योग और भक्ति दोनों ही मानव जीवन को श्रेष्ठ बनाने में समानरूप से समर्थ हैं।"[3]

योग का अर्थ

भारतीय मनीषियों द्वारा मन रूपी दर्पण को स्वच्छ करने के सतत प्रयास ही योग कहलाये।[4] वेदों में उल्लिखित मन साधना को योग रूप में महर्षि पतंजलि ने शास्त्रीय रूप दिया।

- -

1. डा॰ रामकुमार वर्मा - हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास - पृ॰ 298
2. डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी - मध्यकालीन धर्म साधना - पृ॰ [illegible]
3. डा॰ शिवशंकर शर्मा - भक्तिकालीन हिन्दी - साहित्य में योग - भावना - पृ॰ 139
4. डा॰ प्रतापसिंह चौहान - [illegible] - पृ॰ [illegible]

चित्तवृत्तिनिरोधरूपिणी योग[1] की साधना के आठ अंग — यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि, ये अष्टांग योग कहे जाते हैं । "हठ योग प्रदीपिका" में आत्मा का परमात्मा से तादात्म्य स्थिर करनेवाली किसी भी साधना को योग कहा है ।[2] इस प्रकार योग शब्द एक दार्शनिक और पारिभाषिक अर्थ में प्रयुक्त हुआ है ।

योग और भक्ति की समन्वित परम्परा में योग शब्द से सम्बद्ध निम्न प्रणालियाँ मुख्यतया विकसित हुई जिनसे सन्त साहित्य प्रभावित हुआ है और हमारे आलोच्य कवियों की कृतियों में इनका स्पष्ट वर्णन हुआ है ।

1. हठयोग 2. राजयोग 3. लययोग 4. कर्मयोग 5. ज्ञानयोग 6. भक्तियोग ।

योग-साधना के मूलतत्व व स्वरूप

हिन्दी सन्त काव्य में योग साधना के इन मूल तत्वों का निरूपण हुआ है ।

पिण्ड ब्रह्माण्ड के ऐक्य की भावना, वायु-साधना, नाडी साधना, मुद्रायें, षट्चक्र, ब्रह्मरन्ध्र, कुण्डलिनी, जागरण, सुरति-निरति और सहज की प्रवृत्ति ।[3] इन मूल तत्वों का निरूपण सन्त नामदेव और कबीर के काव्य में भी स्वाभाविक रूप से हुआ है । इन्होंने सभी परम्परागत यौगिक क्रियाओं को सहज बनाने का प्रयत्न किया है अतः उनकी योग साधना के विशिष्ट स्वरूप को हम हठयोग, लययोग, सहजयोग द्वारा अभिव्यंजित कर सकते हैं । मध्यकालीन धर्म साधना को सन्तों की विशिष्ट देन सहजयोग ही है । जिसका निरूपण हमारे आलोच्य कवि की कृतियों में हुआ है ।

---

1. पातंजल योग दर्शनम् - प्रथम समाधि पाद - सूत्र 2
2. हठयोग प्रदीपिका - पृ० 6
3. डा० शिवशंकर शर्मा - भक्तिकालीन हिन्दी साहित्य में योग भावना - पृ० 279

पिण्ड ब्रह्मांड की एकता

योग साधना का यह मूल तत्त्व है ।

नामदेव के काव्य में उस एकता का प्रतिपादन बड़े स्पष्ट रूप में हुआ हुआ है । एक पद में उस राजाराम निरंजन की सेवा करने के लिए कहते हैं जिसका स्थान अड़सठ तीर्थों के मध्य में स्थित मन रूपी सरोवर है । "एक तथा तामे ताको घर" कहकर उन्होंने उस ब्रह्मांड के अधिपति का स्थान भी वहीं पिण्ड के भीतर ही देखा ।[1] सन्त कबीर ने बड़े संक्षेप में "कायामधे बैकुण्ठवासी" कह पिण्ड-ब्रह्मांड की एकता की पुष्टि की है ।[2]

इस तरह दोनों ने ही सिद्धान्तरूप में पिण्ड ब्रह्मांड के ऐक्य को माना है । इससे योग साधकों को उस परमतत्त्व को विश्व में और अन्तरात्मा में प्राप्त करने की प्रेरणा मिलती थी । आगामी सन्तों दादूदयाल भीखासाहब, पलटूदास आदि ने इस सिद्धान्त की सम्पुष्टि की है ।

हठयोग

हठयोग योग साधनाके मूलतत्त्व नाडी साधना और पवन-साधना से सम्बद्ध है । सन्त काव्य में इडा, पिंगला, सुषुम्ना, ध्रुव, ब्रह्मनाडी इन नाडियों का विशेष उल्लेख हुआ है ।

---

1. त्रिवेणी प्राग करहु मन मंजन
   सेवो राजाराम निरंजन ।।
   अठसठि तीरथ मधि सरोवर
   एक तथा तामे ताको घर ।।
   भणत नामदेव सुनो तिलोचन ।
   ए तीरथ सब अघ के मोचन ।।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 108
2. काया मधे कोटि तीरथ, काया मधे कासी ।
   काया मधे कवलापति, काया मधे बैकुण्ठवासी ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद 17।

इडा, पिंगला नाड़ियों को सुषुम्ना से मिलाने की प्रक्रिया हठयोग कहलाती है । हठयौगिक प्रक्रिया में प्राणायाम व आसन को वरीयता दी जाती है अतः यह साधना प्राणों के आयाम की साधना कहलाती है । हठयोग के सम्बन्ध में यह भी एक धारणा है कि प्रत्येक प्राणी के नासिका रन्ध्रों से निष्कासित "ह" और "ठ" के रूप में श्वासोच्छ्वास ध्वनित होता है अतः इसे हठयोग कहते हैं ।

सन्तों ने हठयोग के क्लिष्ट रूप का कहीं कहीं वर्णन किया है पर नाड़ी साधना की जटिलता को सहज बनाकर ग्रहण किया । यही कारण है कि हठयोग की साधना में गृहीत व प्रचारित षट्कर्म :- धौति, वस्ति, नेति, नौलि, कपाल भाति, त्राटक के प्रति ये सन्त उदासीन रहे । इन्होंने इसे जटिल प्रपंच समझकर त्याग दिया है । नामदेव की कविता में हठयोग की साधना का उल्लेखमात्र हुआ है पर कबीर के काव्य में उसका विस्तृत वर्णन प्राप्य है । ऐसा प्रतीत होता है कि प्रारम्भ में उनकी योग में अधिक आस्था थी ।

नामदेव इडा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा पवन साधना कर ब्रह्म-ज्योति में मिल जाने की बात कहते हैं तब गगनमण्डल में पहुँच निर्वाण पद का उल्लेख करते हैं [1] तो सन्त कबीर भी इडा-पिंगला के माध्यम से [2] उसी गगनमण्डल में घर बनाने की बात करते हैं । और बंकनालि द्वारा उस अमृतपान के सुख की अनुभूति व्यक्त करते हैं ।[3]

---

1. इडा पिंगला सुषमनि नारी, पवना बंधि रहाऊगा ।
   चन्द्रसूर दोऊ सम्भिरि राखू । ब्रह्म ज्योति मिलि जाऊंगा ।
   सदा संतोष रहूं आनन्द में । सायर बूंद समाऊंगा ।
   गगनमण्डल में रहनि हमारी । पुनरपि जनमि न आऊंगा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - ९९
2. इडा प्यंगुला नाड़ी कीन्ही, ब्रह्म अगिनि परजारी
   ससि हर सूर द्वार दस मूंदि लागी जुग तारी । कबीर ग्रंथावली, पद-74
3. अवधू गगन मण्डल घर कीजे ।
   अमृत झरे सदा सुख उपजे, बंकनालि रस पीजे । कबीर ग्रंथावली, पद-70

शरीर में ये तीनों नाडियां जिस बिन्दु पर मिलती है उस संगम स्थल का महत्व गंगा-यमुना और सरस्वती के त्रिवेणी संगम के समान पवित्र माना गया है । दोनों ने उसे त्रिवेणी कहा है ।

नामदेव और कबीर ने इडा-पिंगला को चन्द्र-सूर्य के रूपक द्वारा भी अभिव्यक्त किया है और कबीर ने सुषुम्ना नाडी को "अग्नि" या बंकनालि की संज्ञा दी है । नामदेव के काव्य में केवल सुषुम्ना शब्द का ही प्रयोग हुआ है उसके लिए "बंकनालि", अग्निपारिभाषिक शब्द का प्रयोग नहीं किया ।

सन्तों के साधना पक्ष में मुद्रा का भी महत्व है । योग साधना के आवश्यक षट्मुद्राओं --- अगोचरी, भूचरी, खेचरी, चाचरी, शाम्भवी, और उन्मनी में से सन्तों ने उन्मनी मुद्रा के प्रति सर्वाधिक आस्था दिखाई है पर वह भी हठयोग की जटिल मुद्रा के रूप में नहीं, अपितु उसे भी सहजीकृत बनाकर लययोग से सम्बद्ध किया । हठयोग- लययोग की सीढ़ी है, साधन है । अतः हमारे आलोच्य ध्य सन्त साधकों को लययोग की अनुभूति भी हुई थी ।

लययोग

मन को भगवान में लीन या लय करना ही लय योग है । यह योगियों के ध्यान योग का ही एक रूप है । मन का यह लय नाद के श्रवण या ज्योति के दर्शन से सम्भव होता है । इस अवस्था का वर्णन नामदेव ने बड़े स्पष्ट रूप से किया है । वह झिलमिल प्रकाश करोडों सूरज के समान ज्योतित और अनाहद नाद के श्रवण से जिस अविनाशी तत्व के दर्शन हुए हैं वही नामदेव की निश्चल अर्थात स्थिरभक्ति है ।[1] यही अवस्था मन की उन्मनी मुद्रा है जिसका वर्णन नामदेव ने "उन्मनी" शब्द का प्रयोग न करते हुए भी बड़े स्पष्ट रूप में किया है ।

---

1. झिलमिलि झिलमिलि नूरा रे । जहाँ बाजै अनहद तूरा रे ।
ढोल दमामा बाजै रे । तहाँ सबद अनाहद गाजै रे ।
फिर रायाँ जोति प्रकासी रे । जहाँ आपै आप अविनासी रे ।
जहाँ सूर्य कोटि प्रकासा रे । तहाँ निश्चल नामदेव दासा रे ॥
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 170

सन्तों के अनुसार "उन्मनी" वह मुद्रा है जिसमें मन को प..त्मा के प्रति उन्मुख किया जाता है अर्थात् मन को सांसारिक आसक्तियों से विमुख कर परमात्मा के प्रति उन्मुख करना ही उन्मनी अवस्था है दूसरे शब्दों में आसक्त मन की अनासक्त अवस्था ही उन्मनी मुद्रा है । जिसकी अनुभूति को नामदेव "अनमडिया मन्दलु बाजै" कह व्यक्त करते हैं[1] तो कबीर ने "सुनिमण्डल में मंदला बाजै तहाँ मेरा मन नाचै" द्वारा अभिव्यक्त किया है ।[2] दोनों की अनुभूति में साम्यता के कारण ही अद्भुत शब्दसाम्य भी है । कबीर के काव्य में इस उन्मनी अवस्था का बड़े व्यापक रूप में वर्णन प्राप्य है ।

लययोग का लक्ष्य है कुंडलिनी शक्ति को जागृत करना । कुछ आलोचक इस कुंडलिनी का सम्बन्ध हठयोग से मानते हैं और कुछ के मत से ध्यान योग से । सन्तों ने विशेषतः कबीर और उनके अनुवर्ती कवियों द्वारा लययोग द्वारा इस कुंडलिनी शक्ति को जागृत कर विभिन्न षट्चक्रों में आरोहन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुँचने के विस्तृत विवेचन किये हैं । ब्रह्मरन्ध्र में सहस्त्रदलकमल की स्थापना है उस कमल के मध्य एक चन्द्रमा की स्थिति है । यहाँ से अमृतस्राव होता है । इस अवस्था में योग साधकों को असीम आनन्द की अनुभूति होती है इस कुंडलिनी योग को सहजयोग में परिवर्तित कर सन्तों ने उस परमानुभूति के आनन्द को अभिव्यक्त किया ।

- -

1\. अनमडिया मंदलु बाजै ।
बिन सावन घनहरु गाजै ।।
बादल बिनु बरखा होई ।
जउ ततु बिचारै कोई ।।
जब औतारि नभ समानिआ ।
मेरा रामु एकु करि जानिआ ।। सन्त नामदेव की हिंदी पदावली-पद-154

2\. गगन गराज मघ जापद, तहाँ दीसै तार अनन्त रे ।
बिजुरी चमकि घन बरषि है, तहाँ भीजत है सब सन्त रे ।।
सुनिमंडल में मन्दलाबाजै, तहाँ मेरा मन नाचै ।
गुरु प्रसादि अमृतफल पाया, सहज सुषमना काछै ।
कबीर ग्रन्थावली, पद-72

सहजयोग

यह वास्तव में राजयोग[1] का ही रूपान्तर कहा जा सकता है । इसमें ब्रह्म को ही ब्रह्म का सहजरूप माना है, इसे ही सन्तों ने "सहजशून्य" कहा है । इसी सहज में मन को लय करना ही सहजयोग है, यही उन्मनावस्था है, सहज समाधि है ।

कबीर के शब्दों में "सहजे होय सो होय"[2] साधना का अनायास व अप्रयत्नीकृत रूप ही सहज साधना है ।[3] यह सहजयोग सन्तों के योग की अन्तिम स्थिति है । नामदेव भी सहज साधना को ईश्वर प्राप्ति का सबसे सुगम व श्रेष्ठ मार्ग मानते हैं । सहज से उनका अभिप्राय अहेतुक भक्ति से है । ईश्वर प्रेम की सच्ची अनुभूति ही तो साधक की सहज अवस्था है ।[4] गुरु के अनुग्रह से जब राम-नाम हृदय की धड़कन ही बन जाता है तब साधक को किस प्रकार का अनुभव होने लगता है उसकी झलक नामदेव इस प्रकार करते हैं:- "सद्गुरु की कृपा से भगवान् से भेंट होने से मन को धैर्य मिलता है, झिलमिल प्रकाश का दर्शन, अनाहत नाद का श्रवण होता है तब आत्मज्योति परमात्म-ज्योति में समा जाती है । अन्तःकरण में उस रत्न का प्रकाश विद्युत समान चमकने लगा । भगवान् से दूरी समाप्त हुई और आत्मा उसी से आपूरित होती है तब असंख्य दीपक की ज्योति को मन्द करनेवाले सूर्य का प्रकाश चहुँओर छा गया । इस सहजानन्द की अनुभूति

---

1. राजयोग – समाधिश्च उन्मनीच मनोन्मनी ।
   हठयोग प्रदीपिका – 4/3
2. कबीर ग्रन्थावली – परिशिष्ट पदावली, पद – 15
3. सहज सहज सब को कहै, सहज न चीन्हे कोइ ।
   जिन्ह सहजै हरिजी मिलै, सहज कीजे सोई ।
   – वही – सहज को अंग, सा० 4
4. पुण्डलिक नामा भए निःकामा, सहज समाधि लगाऊँ रे ।
   –– सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली – पद – 66

को गुरुप्रसाद से जानकर नामदेव उसी सहज में समा गये ।[1] अन्य एक पद में नामदेव कहते हैं कि इस सहजशून्य का मैं सहजसमाधि में ध्यान करता हूं वही एकमात्र सत्य है है ।[2] अतः वे स्पष्ट शब्दों में "पावहि पावहिं सहजे मुरारी" का घोषणा करते हैं कि उस मुरारी को तुम सहज साधना द्वारा ही पा सकोगे । अनाहत का घंटा बजाकर मैं उस त्रिवेणी अर्थात् इडा,पिंगला,सुषुम्ना के संगम में निमज्जन करते हुए नैनों रूपी कुसुम और चित्त रूपी चन्दन तथा प्रीति और ध्यान रूपी पत्ती व ज्ञान रूपी धूप-दीप तथा अजपाजाप द्वारा मैं उस अजरामर ब्रह्म का पूजन करूंगा । अन्तर्ध्यान उनकी सहज समाधि का स्वरूप है।[3]

सन्त नामदेव की अनुभूति ही कबीर की अनुभूति बनी अतः कबीर के सहजयोग और सहजसमाधि वर्णन में नामदेव के भाव ही पूर्णरूपेण विस्तार से

- -

1. जब देखा तब गावा । तउ जन धीरजु पावा ।
नादि समाइलो रे । सतिगुर भेटिलु देवा ।।
जहां झिलमिल कारं दिसता । तह अनहद सबद बजंता ।।
जोति में जोति समानी । मैं गुरुपरसादी जानी ।।
रतन कमल कोठरी । चमकी बिजुली ताही ।।
नेरे नाहीं दूरि । निज आतमे रहिआ भरपूरि ।
जहां अनहत सूर उजारा । तहं दीपक जलै छंछारा ।।
गुरुपरसादी जानिआ । जनु नामा सहज समानिआ ।।
-- सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 200

2. केवल ब्रह्म रति करि जाण्यां । सहजसुनि मैं ध्याया रे ।
-- सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 64

3. पावहि पावहि सहजे मुरारी ।
सबद अनाहद घंटा बाजै, केवल विचारी बीठला ।।
त्रिवेणी संगम मंजन करिहूं । मने बुलाया ।
नैन कुसुम करि परचौ । चित्ते चन्दन लाया ।।
पाती प्रीति ध्यान ले । धूप दीप ग्याना ।
अजपाजपौं अपूज्या पूजौ । अजरामर थाना ।
रूप अतीत सकल गुण रहता । गगन समाना ।
तहां ते अधिक लौ लागी । अन्तरि ध्यानां ।
-- वही -- पद- 164

प्रतिबिम्बित हुए हैं । वे सन्तों को सम्बोधित करते हुए उद्घोषणा करते हैं :-
"सन्तो सहज समाधि भली ।"

उस सहज समाधि का विस्तार से स्वरूप विश्लेषण करते हुए वे कहते हैं कि इसमें आँखों को मूँदने, कानों को रूँधने, काया को कष्ट देने की आवश्यकता नहीं । केवल खुले नैनो से उस ब्रह्म के सुन्दर रूप को निहारना ही सहज समाधि है । स्वाभाविक गमन ही उसकी परिक्रमा है और सहज सोना ही उस परमतत्व के प्रति दण्डवत है । उस शब्द ब्रह्म में निरन्तर मन अनुरक्त रहे, मलीन वचनों का त्याग करे । कबीर ने इस अवस्था को "उनमनि रहनी" कहा है । यही परमसुख है ।[1] मनसा वाचा कर्मणा भगवत्स्मरण ही इन सन्तों की सहज समाधि है । दूसरे शब्दों में मन साधना ही सहजयोग है । इस सहजयोग की प्रतिपादन दोनों ही कवियों के काव्य में समान भावों और शब्दों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है ।

योग परक रूपक और उलट-वासियाँ

सन्तों की दार्शनिक विचारधारा में योग परक रूपक और उलटवासियों का महत्वपूर्ण स्थान है । शास्त्रीय तथा ऐतिहासिक परम्परागत बहुत से योग परक रूपक, उलटवासियों और विशिष्ट साधनात्मक शब्द सन्त साहित्य में प्रयुक्त हुये हैं । इनमें से बहुत से प्रमुख रूपक और उलटवासियों का प्रयोग नामदेव और कबीर की कविताओं में प्राप्त होता है ।

---

1. सन्तो सहज समाधि भली ।
साईं ते मिलन भयो जा दिन ते सुरत न अन्त चली ।
आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नैन मैं हँस हँस देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ ।
जहँ जहँ जाऊँ सोइ परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत पूजूँ और न देवा ।
शब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वचन का त्यागी ।
कहै कबीर यह उनमनि रहनी सो परगट करि गाई ।
सुख दुख के इक परे परमसुख तेहि में रहा समाई ।
श्रीवियोगी हरि सम्पादित संक्षिप्त सन्त - सुधासार - पृ० 49

इडा, पिंगला, सुषुम्ना, शून्य, सहज, शब्द अनाहद आदि नाद, गगनमण्डल आदि विशिष्ट साधनात्मक शब्दों की चर्चा गत पृष्ठों में की जा चुकी है। इसके अतिरिक्त उदाहरणार्थ अवधूत, अजपाजाप, खसम आदि कुछ शब्दों के बारे में उभय कवियों की साम्य धारणा पर दृक्पात करना उचित होगा।

अवधूत

सन्तों से पूर्व नाथों की योग साधना के अन्तर्गत अवधूत का पर्याप्त महत्व है। इसी अवधूत को सम्बोधित करते हुए नामदेव ने सहजसमाधि की चर्चा की। वह अवधूत ज्ञान रूपी बेल की वृद्धि करे और माया रूपी बेल को कुंठ कर दे।[1] और कबीर की दृष्टि में अवधूत मुद्रा, निरति-सुरति, सींगी से युक्त, गगन निवासी, महारस पीनेवाला, ब्रह्माग्नि से शरीर को दग्ध करनेवाला होता है।[2]

इस प्रकार नामदेव और कबीर की दृष्टि में अवधूत एक असाधारण योग साधक हैं।

अजपाजाप

आभ्यन्तरिक जाप ही अजपाजाप है। आत्मज्ञान होने पर साधक के श्वास प्रश्वास में प्रभु नाम का ही जप होने लगता है। यौगिक साधना के अर्थ से व्यापक अर्थ में सन्तों ने भक्ति की धुन में इस शब्द के विभिन्न प्रयोग किये हैं।

नामदेव सहज साधना का वर्णन करते हुए अजपाजाप का उल्लेख करते हैं[3] तो कबीर ने कई स्थलों पर इस अजपाजाप का निर्देश करते हुए भक्ति

---

1. अवधू बेली बिरधि करेली
   निरगुण जाई निरंजन लागी । मारीहू न मरेली ।।
   सहज समाधि बाडी रे अवधू । सतगुरु बाही बेली
   रूपी महारस सींचन लागा । तत तरवर जाई चढेली ।
   संत नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-97
2. अवधू ग्यान लहरि धुनि मांडी रे, सबद अती अनाहद राता।
   वह विधि चिण्णा बाडी - सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली-पद-10
3. अजपा जपो, अपूजा पूजो, अजरामर थाना -
   संत नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 164

का समर्थन किया है ।[1]

अष्टकमल

योग साधना के अन्तर्गत महती मान्यता प्राप्त इस अष्टकमल या अष्टचक्र का नामदेव के काव्य में दो तीन स्थलों पर निर्देश है ।[2] तो कबीर के काव्य में योग साधना का विस्तृत वर्णन होने से अनेकों स्थानों पर इस अष्टकमल की चर्चा हुई है ।

खसम

अपने मूल में कई परम्पराओं के अर्थ सम्मिलित किये हुवे खसम शब्द का प्रयोग नामदेव[3]और कबीर[4] द्वारा परमात्मा के अर्थ में अधिक हुआ है ।

उलटवासी

इन तत्त्वों की दार्शनिक विचार धारा को समझने के लिए सहायक है। संत साहित्य में अधिकांश आध्यात्मिक उक्तियाँ उलटवासी के माध्यम से कही गई है । व्युत्पत्ति की दृष्टि से उलटवासी का अर्थ उल्टी चर्चा या उस रचना से है जिसमें बात को चमत्कारपूर्ण ढंग से उलट कर वर्णित किया जाए ।

नामदेव और कबीर के पदों का इस दृष्टि से अध्ययन करने पर जल की मछली का खजूर के पेड़ पर चढ़ना, पहले पुत्र पीछे माता का जन्म लेना, मूसे का बिल्ली को पकड़ना, गुरु का शिष्य के पाँव पड़ना, सिंह द्वारा गाय को चराना, बिल्ली का कुत्ते को दबोचना आदि उक्तियाँ समानरूपेण व्यवहृत हैं । उदाहरणार्थ उनके एक दो पदों पर दृष्टिपात करना उचित होगा ।

---

1. शून्य मरे अजपा मरे, अनहद हू मरि जाय ।
   राम सनेही ना मरै कह कबीर समुझाय ।। - कबीर ग्रन्थावली- पद 256
2. अष्टकमल दल नामदेव गावे ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद-85
3. बैकुण्ठनाथ खसम हमारे ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-79

नामदेव परमतत्व की अनुभूति को आश्चर्यरूप में वर्णित करते हुए उसे अकथनीय बताते है। वह आश्चर्य चींटी की आँखों में हाथी समा जाने के समान है । कोई परमात्मा को दूर और कोई निकट बताता है । वे इस बात को पानी में रहनेवाली मछली का खजूर के पेड़ पर चढ़ने के दृष्टान्त द्वारा समझाते है । कोई उसे इन्द्रियों के अधीन और कोई उसे मुक्त बताते हैं कोई सहजसमाधि, कोई वेद पुराणों द्वारा उसकी प्राप्ति का उपाया बताते है पर नामदेव की दृष्टि में यह परमतत्व अवर्णनीय है ।[1]

किंचित पाठान्तर के साथ सन्त कबीर ने उलटवासी के माध्यम से ही परमपद प्राप्ति की बात की ।[2]

- -

1. अदभुद अकथा कथ्या न जाई । चींटी के नेत्र कैसे गजेन्द्र समाई ।
कोई बोले नेरे कोई बोले दूरि । जल की माछली कैसे चढे खजूरि ।
कोई बोले इन्द्री आधीन कोई बोले मुक्ता ।
सहज समाधि न चीन्हें मुक्ता ।
कोई बोले वेद सुम्रति पुराना । सतगुरु कथीया पद निरवाना
कहै नामदेव परम तत्व है ऐसा । जाके रुप न रेख वरण कहौं कैसा ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद-76

2. एक अचंभा देखा रे भाई, ठाढ़ा सिंध चरावै गाई ।
पहले पूत पीछे भइ माइ, चेला के गुर लागै पाई ।
जल की मछली तरवर ब्याई, पकड़ि बिलाइ मुरगै खाई ।
बैलहि डारि गूंनि घरि आई, कुत्ता कूं लै गई बिलाई ।
कहै कबीर जो या पद को बूझै, ताकूं तीन्यू त्रिभुवन सूझै ।
कबीर ग्रन्थावली - पद- 11

अतः दोनों कवियों की समानधारणा उनके एक ही परम्परा से सम्बद्ध होने का प्रमाण है।

यद्यपि सन्तों ने योग साधना का परम्परागत वर्णन किया है पर वे उसे अन्तिम सत्य नहीं मान सके। अतः नामदेव और कबीर उस अनाहत नाद का बजना स्वीकार करते हैं पर उसे अन्तिम सत्य नहीं मान सके, सत्य है उसका बजानेवाला।[1] इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि उनकी साधना का मूल हेतु योग नहीं, अपितु भक्ति था। अतः इनके सहजयोग की अन्तिम सीढ़ी भक्तियोग है।

---

1. बिन बजाया बाजा बाजै, नादे अम्बर गाजै।
   बिन भैरे हीरा झणकारा, न दीसै बजावणहारा॥
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 112
   बाजै अनहद नाद धुनि हुई। जो बजावै सो औरै कोई।
   बाजी नाचै कौतिग देखा। जो नचावै सो किनहु न पेखा।
   कबीर ग्रन्थावली - पृष्ठ- 231 अष्टपदी रमैणी

"खण्ड - 'ब'"

भक्ति

भक्ति का अर्थ

अपनी सुदीर्घ परम्परा को लिये हुए भक्ति का व्युत्पत्यर्थक अर्थ भगवान् की सेवा के प्रकार से है । इसके अतिरिक्त पूज्य वर्ग में अनुराग[1] स्वस्वरूप का अनुसन्धान[2] ईश्वर में परम-अनुरक्ति[3] प्रेम की चरमावस्था ही भक्ति कही गई है । तथा भक्ति के क्षेत्र में जाति, कुल, विद्या को निरर्थक बताया है ।[4]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार श्रद्धा और प्रेम के योग का नाम भक्ति है ।[5] भक्ति का लौकिक अर्थ है कि विभाजित रहते हुए भी युक्त रहना, अतः भक्त सायुज्य नहीं, सामीप्य मुक्ति चाहता है । भक्ति का एक अर्थ Painting या चित्रांकन भी है । भक्त का भगवान् रंग में रंग जाना ही तो भक्ति है । इस तरह भक्ति का क्षेत्र सुविस्तीर्ण और व्यापक है ।

भक्ति के विविध रूप हैं :- परा भक्ति और गौणी भक्ति[6], वैधी और रागानुगा[7] तथा साधनभक्ति व भावभक्ति और प्रेमाभक्ति[8] नवधा भक्ति[9] इत्यादि ।

---

1. पूज्येष्वनुरागो भक्ति - पाराशर स्मृति
2. स्वस्वरूपानुसंधानं भक्तिरित्यभिधीयते - आचार्य शंकर
3. सा परानुरक्तिरीश्वरे - शांडिल्य भक्तिसूत्र 1/2
4. नारद भक्ति सूत्र - 2/3
5. चिन्तामणि - पृ० 207
6. श्रीमद्भागवत -
7. नारद भक्ति सूत्र - 56
8. श्री रूप गोस्वामी - भक्ति रसामृत
9. श्रीमद् भागवत - 3/29/11

श्रीमद्भागवत में पराभक्ति को ही निर्गुण भक्ति कहा गया है ।[1] सन्तों की भक्ति अतः, निर्गुण के प्रति होने से निर्गुण भक्ति कहलाती है ।

इन प्रकारों की दृष्टि से सन्त नामदेव और कबीर ने अपनी भक्ति को "भावभगति" और "प्रेमभगति" द्वारा व्यंजित किया है । सन्त परम्परा के आगामी सन्तों द्वारा "परा" और "प्रेमलक्षणा" आदि पारिभाषिक दार्शनिक शब्द भी प्रयुक्त हुये है ।[2] इस भक्ति को उद्भावितकरनेवाले है गुरु और साधु ।

भक्ति के उद्भावक तत्व

भक्ति को उद्भावित करनेवाले तत्वों में गुरु तत्व, साधु-संगति या सत्संगति का अधिक महत्व है । परम पद की प्राप्ति के मार्ग में सभी ने इनकी महिमा का गान किया है । "गुरु प्रसाद साध की संगति, तहां परम पद पाया।"[3]

गुरु-तत्व

भक्ति का मार्ग-दर्शक गुरु ही है । सन्तों ने गुरु की महती महिमा का विस्तार से वर्णन किया है । उन्होंने गुरु को कभी साक्ष्य परमतत्व के रूप में देखा तो कभी उसे परमतत्व के उपलब्ध करानेवाले किसी शरीरधारी व्यक्ति के रूप में और कभी ज्ञान और विवेक के रूप में गुरु का उल्लेख किया है ।[4]

गुरु को भारतीय परम्परा में सदा ऊँचे से ऊँचा स्थान दिया जाता रहा है । सभी धर्मों व शास्त्रों में गुरु के प्रति गम्भीर निष्ठा प्रदर्शित की गई है ।

---

1. श्रीमद् भागवत - 3/29/13
2. क - "पराभक्ति अगाध अद्भुत विमल और निष्काम"
   चरनदास की बानी - भाग 2 पृ. 33
   ख - "शिष्य सुनाऊ तोहि प्रेमलक्षणा भक्ति का" - सुन्दरदास
   श्री वियोगी हरि - सन्त सुधा सार - पृ. 577
3. कबीर ग्रन्थावली - पद - 269
4. आ. परशुराम चतुर्वेदी -
   सन्त साहित्य के प्रेरणा स्रोत - पृ. 110

वैदिक साहित्य में गुरु को साक्षात् परब्रह्म ही कहा गया है ।[1] गुरु ही ज्ञानांजन की शलाका से अज्ञानान्धकार से अन्ध शिष्य की आँखों को उन्मीलित करनेवाला है ।[2] अर्थात गुरु ही वह माध्यम है जिसकी सहायता से समस्याओं का समाधान होता है, भक्त का समुचित विकास होता है वही नर को नारायण बनाने की क्षमता रखता है । अतः गुरु को गुरुदेव कहा गया है ।

तान्त्रिक साहित्य में गुरु शब्द का प्रयोग दीक्षा गुरु के लिए किया गया है । वहाँ गुरु ही दीक्षा का मूल है । दीक्षा मंत्र का मूल है और मन्त्र देवता का मूल और देवता सिद्धि का मूल कहा गया है। अर्थात् मन्त्रसिद्धि गुरुदेव की कृपा पर ही निर्भर है ।

जैन और सिद्ध कवियों ने भी अपनी रचनाओं के प्रारम्भ में गुरु वन्दना की है ।

सन्तों के पूर्ववर्ती नाथ साहित्य में गुरु-तत्त्व को प्रधानता दी गई है । गुरु गोरखनाथ के अनुसार सगुरा ही अमृत का पान कर सकता और निगुरा प्यासा ही रह जायेगा ।[3] अन्य एक शब्दी में वे कहते हैं कि त्रिगुणात्मका माया को दिखानेवाला सद्गुरु ही है ।[4] और आत्मब्रह्म को दिखानेवाले गुरु को ब्रह्म से पूर्व नमन करना चाहिए ।[5]

---

1. गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः ।
   गुरु साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
2. अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
   चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥
3. गगन मंडल में औंधा कूवाँ, तहाँ अमृत का वासा
   सगुरा होइ सो भरि भरि पीवै, निगुरा जाइ पियासा-गोरखबानी-पृ. 9
4. अरे! गोरख त्रिगुणी माया, सतगुरु होय लखावे । - वही - 137
5. प्रथमे प्रणऊं गुरु के पाया । जिन मोहि आतम ब्रह्म लखाया
   सतगुरु सबद कह्या तै बूझ्या । तिहूं लोक दीपक मनि सूझ्या ।
   - वही - पृ. 164

नाथपन्थीय वारकारी सन्त ज्ञानेश्वर ने अपने सद्गुरु निवृत्तिनाथ के प्रति अनेक अभंगों में अपने श्रद्धापूर्ण हृदयोद्गार प्रकट किये हैं ।

इसी परम्परा में सन्त नामदेव और सन्त कबीर के गुरु तत्व सम्बन्धी विचारों का विश्लेषण करने पर उनमें तत्वतः पूर्ण साम्य ही दृष्टिगोचर होता है । सभी सन्त और भक्त गुरु की महत्ता का गान करते अघाते नहीं । आगे चलकर सिक्ख धर्म के दस गुरुओं की वाणियों ने "श्रीगुरु ग्रन्थ साहब" का रूप धारण कर लिया । यही इसका प्रमाण है -

गुरु के तीन रूप हमें इन संतों के साहित्य में मिलते हैं ।

1. लौकिक गुरु या प्रत्यक्ष गुरु ।
2. सतगुरु या परमतत्त्व की अनुभूति करानेवाला गुरु या ज्ञान गुरु
3. परम-गुरु या अलौकिक गुरु ।

प्रत्यक्ष गुरु ही इनके शरीरधारी दीक्षागुरु थे जिनके प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए इन सन्तों ने उनका नाम या घटना द्वारा उल्लेख किया है पर उनका कोई परिचय नहीं दिया ।

सन्त नामदेव ने अपने दीक्षा गुरु विसोबा खेचर के प्रति स्थान-स्थान पर अपनी श्रद्धा व्यक्त की है ।[1] इसके अतिरिक्त मराठी अभंगों में गुरु का अनेक बार उल्लेख करने के साथ ही दीक्षा की घटना का भी वर्णन किया है । वे लिखते हैं कि गुरु ने मस्तक पर हाथ रखकर, कानों में गुप्त रहस्य कह पदपिंड-विवर्जित कर दिया और उनके गुरु विसोबा खेचर ने ही, "ज्ञान ही गुरु है" का उपदेश दिया ।[2]

सन्त कबीर ने किसी घटना का वर्णन न करते हुए अपने गुरु रामानन्द द्वारा चेताने का उल्लेख किया है ।[3]

---

1. खेचर जी के चरणों पर नामा लिपी लागा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-184
2. अवघी सारी मली मात, मस्तकी ठेविला हात ।
   पदा पिंड विवर्जित केला नामा ।
   मग खेचर म्हणे मज ज्ञान हे चि गुरु ।
   सैंग अगोचर म्हणे केला नामा । नामदेव गाथा - अभंग 1359
3. क- काशी में हम प्रगट भये हैं रामानन्द चेताए ।
   ख- कह कबीर दुविधा मिटी, गुरु मिलिया रामानन्द -
   संत कबीर [illegible] साखी - 1/8

गुरु के दूसरे रूप सद्गुरु के सम्बन्ध में दोनों ही कवियों ने स्वानुभूति की दृढ़ता के साथ उसे परमतत्व की अनुभूति करानेवाला कहा है और कहीं वह परमतत्व के रूप में भी वर्णित है । उनके व्यक्त उद्‌गार सद्गुरु के प्रति गम्भीर निष्ठा के परिचायक है । नामदेव कहते हैं कि सतगुरु ने उन्हें परमतत्व के व्यापक स्वरूप की अनुभूति कराई ।[1] और उन्हें निर्वाण पद का ज्ञान भी सतगुरु द्वारा मिला ।[2] अतः वे उस सतगुरु के चरणों में प्रणाम करते हैं । सतगुरु ही निमिष मात्र में नर को सुर बना देता है ।[3]

नामदेव के उपरोक्त विचारों की प्रतिध्वनि कबीर की निम्न पंक्तियों में हुई है । वे कहते हैं कि सतगुरु ने परमतत्व का विचार कहा[4] व उसकी प्राप्ति का मार्ग दिखाया ।[5] उस सद्गुरु के प्रति कृतज्ञता का आभार प्रदर्शन करते हुए कहा है "सतगुरु की महिमा अनन्त है उसने मेरे लिए अनन्त उपकार किये हैं क्योंकि अनन्त के दर्शनार्थ उसने मेरे अनन्त लोचन खोल दिये ।[6] मैं पहले लोकवेद की परम्पराओं के पीछे लगा हुआ था जहाँ आगे आकर उसने मेरे हाथ में ज्ञान और विवेक का दीपक दे दिया और उसमें, उस दीपक में कभी न घटनेवाला स्नेह रूपी तेल और कभी न समाप्त होनेवाली बाती भी डाल दी है ।[7]

---

1. प्रणवै नामा परमतत्तु । सतिगुरु होईलखाइया ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 209
2. सतगुरु कथीजा पद निरवाना । - वही, पद- 76
3. नर ते सुर होइ जात निमिख में, सतिगुर बुधि सिखलाई ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 205
4. सतगुरु तत कह्यौ विचार, मूल गह्यौ अनभै बिस्तार ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 386
5. सतिगुरु मिले त मारग दिखाया । जगत पिता मेरे मन भाया
   वही, परिशिष्ट - पद- 150
6. सतगुर की महिमा अनन्त, अनन्त किया उपगार ।
   लोचन अनन्त उघाड़िया, अनन्त दिखावणहार । वही, गुरुदेव कौ अंग, सा॰ 3
7. पीछे लागा जाइथा, लोकवेद के साथि ।
   आगै थे सतगुरु मिल्या, दीपक दीया हाथि ।। - 11
   दीपक दिया तेल भरि, बाती दई अघट ।। - 12
   कबीर ग्रन्थावली गुरदेव कौ अंग - सा॰ 11/12

अतः इन सन्त कवियों के अनुसार परमतत्व की अनुभूति करानेवाला सद्गुरु है, नाम-गुरु है। इसको अत्यधिक महत्व प्रदान करते हुए भी इन्होंने उसका नाम-निर्देश या व्यक्तिगत परिचय देने का प्रयास नहीं किया। वह शरीरधारी दीक्षा गुरु भी हो सकता है।

सन्त साहित्य में वर्णित गुरु का तीसरा रूप अलौकिक गुरु कहा है क्योंकि ये सन्त परमात्मा को गुरुवत् मानकर अपनी अनुभूतियों को कुछ भिन्न ढंग से ही अभिव्यक्त करते हैं।

सन्त नामदेव के पदों में एक बात विशिष्ट रूप से दिखाई देती है कि उन्होंने परमतत्व को गुरुवत् मानकर उसका उल्लेख सदा "गुरु देव" शब्द से किया है और सन्त कबीर उसे परमगुरु, जगतगुरु व हरिगुरु और की संज्ञा देते हैं।

नामदेव का प्रसिद्ध दीर्घ पद, जिसकी प्रत्येक पंक्ति "जय गुरुदेउ" से प्रारम्भ करके निर्मित की गई है, वह इसी परमगुरु या अलौकिक गुरु के प्रति ही प्रकटित केवल भावपूर्ण श्रद्धांजलि प्रतीत होती है। इसमें वह परमतत्व गुरुदेव ही एक मात्र सत्य है। नामदेव के जीवन सम्बन्धी वह घटना जिसमें मन्दिर का द्वार पूर्व से पश्चिमाभिमुख करनेवाला उनका आराध्यदेव ही था जिसे उन्होंने गुरुदेव कहा है। इसी परमात्मा या गुरुदेव की कृपा से मुरारी मिलते है, मनुष्य भवसागर से पार उतर सकते हैं।[1] अन्य एक पद में वे गोविन्द को ही गुरुदेव कहते हैं।[2] भगवन्नाम हरि भी गुरुदेव ही है। और इसी कारण उसके नामों को महत्व देते हैं।[3]

---

1. जउ गुरुदेउ त मिलै मुरारि
   जउ गुरदेउत उतरै पारि ।।
   [illegible] गुरु देव ।
   [illegible] सभ सेव ।
   जउ गुरदेउ कछु नहीं हिरै ।
   जउ गुरदेउ देहुरा फिरै ।।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद-219
2. माइ गोब्यंदा बाप गोब्यंदा । जाति पाँति गुरुदेव गोब्यंदा ।वही, पद-35
3. हरि मेरा मात-पिता गुरुदेवा । वही, पद- 54

सन्त कबीर की "गुरुदेव कौ अंग" शीर्षक के अन्तर्गत 35 साखियों का इस दृष्टि से अध्ययन करने पर हम देखते है कि उन्होंने परमगुरु के लिए सतगुरु शब्द का प्रयोग किया है । सतगुरु ही इस संसार में सबका सगा है ।[1] और उस सतगुरु के बताये हुये दाव को सीखकर कबीर प्रेम रूपी पासे से शरीर रूपी चौपड खेल रहे है।[2]

अन्य एक पद में उसे परमगुरु[3] और हरिगुरु कहा है ।[4]

कबीर का सतगुरु किसी ज्ञान गुरु या दीक्षा गुरु का ही वाचक प्रतीत होता है, अलौकिक गुरु का नहीं । उन्होंने सद्गुरु को कुम्हार[5] अमृत की खान[6] व सूरमा[7] आदि सुन्दर विशेषणों से अलंकृत कर उसका बखान किया है ।

गुरु कृपा

भक्ति मार्ग में साधक की सफलता गुरु प्रसाद या गुरु कृपा पर निर्भर है । गोविन्द को बतानेवाला गुरु ही है जो भक्त को यौगिक क्रियाओं में पारंगत करता है । इन सन्तों ने गुरु कृपा द्वारा "ज्योति में ज्योति समाने" और सहज को पहचानने का वर्णन करते हुए गुरुकृपा की आवश्यकता को स्वीकार

---

1. सतगुरु सवान को सगा ।
   कबीर ग्रन्थाo गुरुदेव कौ अंग - सा 1
2. पासा पकड्या प्रेम का, सारी किया शरीर ।
   सतगुरु दाव बताइया खेले दास कबीर । - वही - सा. 32
3. परमगुर देखो हृदय विचारी, कुछ करो सहाय हमारी ।
   वही - पद - 293
4. कबीर सांलव तोरा, तहाँ गोपित हरी गुर मोरा ।
   वही , पद - 31
5. गुरु कुम्हार सिष कुंभ है । वही, गुरुदेव को अंग - सा. 2
6. यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान । कबीरवचनावली - सा. 315
7. सतगुरु सांचा सूरमा - वही - सा. 7

किया है । सन्त नामदेव[1] और सन्त कबीर[2] की सत्सम्बन्धी अभिव्यक्ति में अभूतपूर्व साम्य दीखता है ।

नामदेव गुरु के शब्द को वैकुण्ठ की सीढ़ी मानते हैं[3] तो कबीर के लिए गुरु का शब्द ही अन्तिम साथी है ।[4] अतः वे गुरु के शब्द में ही रमे रहना चाहते हैं ।[5] वही भवबन्धन से पार कराने में समर्थ है । गुरु की उद्धारक शक्ति पर उन्हें पूर्ण विश्वास है । गुरु ही ज्ञान, प्रेम आदि का महत्व बताकर शिष्य का उद्धार करता है । नामदेव कहते हैं कि ज्ञान रूपी अंजन देकर गुरु ने मेरे जन्म को सफल बना दिया ।[6]

गुरु की महिमा के कारण ही उन्होंने गुरु सेवा करने का उपदेश किया है । नामदेव गुरु का आज्ञापालन, निष्काम भजन और गुरु सेवा से ही हरि प्राप्ति की बात कहते हैं ।[7] कबीर की भक्ति भी गुरु सेवा की ही कमाई है । जिसके फलस्वरूप मनुष्य देह की प्राप्ति होती है ।[8]

- -

1. जोति जोति समानी । मै गुरुपरसादी जानी ।
   गुरु परसादी जानिआ । जनु नामा सहज समानिआ ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 200
2. कहै कबीर भवबन्धन छूटे जोतहि जोति समानी ।
   कबीर ग्रंथावली, पद- 72
   कहै कबीर गुरु परसादे, सहजै रह्या समाई । वही, पद-211
3. गुरु को सबद बैकुंठ निसरनी । संत नामदेव हि॰प॰ - पद- 29
4. माटी का तन माटी मिलि है, सबद गुरु का साथी । कबीर ग्रंथा॰ पद 268
5. गुरु के सबद मैं रमि रमि रहूंगा । वही - पद- 331
6. सफल जनमु मोकउ गुरु कीना ।
   दुःख बिसारि सुख अन्तरि लीना ।
   गिआन अंजन मोकउ गुरु दीना । संत नामदेव की हिन्दी पदावली-पद-204
7. नामा भणे हरि गुरु आज्ञा काम । भजन निष्काम गुरु-सेवा ।
   नामदेव गाथा - अभंग - 1376
8. गुरु सेवा तै भक्ति कमाई, तब यह मानस देही पाई ।
   कबीर ग्रन्था॰ परिशिष्ट - पद - 64

गुरु सेवा के साथ भगवद् कृपा की अनिवार्यता को भी माना है क्योंकि गोविन्द की कृपा से ही गुरु मिलते है । नामदेव को भी उनके आराध्यदेव विठ्ठल ने "गुरुवीण मुक्ति नाही" कह गुरु की शरण में जाने का उपदेश दिया । मराठी के बासठ चरणों के लम्बे अभंग में गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए नामदेव ब्रह्म को गुरु के अधीन कहते है ।[1] सन्त कबीर ने गुरु को गोविन्द से बड़ा बताया है । क्योंकि गोविन्द से मिलाने का माध्यम गुरु ही है ।[2]

कबीर ने सद्गुरु को अनेक विशेषणों से अभिहित करते हुए सच्चे सद्गुरु की पहचान पर अधिक बल दिया क्योंकि तत्कालीन परिस्थितियों में हठयोगियों व तन्त्रवादियों के प्रभाव से गुरु का रूप विकृत हो चुका था वे जती का स्वांग पहने घर-घर भीख माँग रहे थे[3] अपनी साधना का दुरुपयोग कर रहे थे अत: सन्तों ने ढोंगी साधुओं को गुरु न बनाने की चेतावनी देते हुए योग्य सद्गुरु की शरण में जाने का उपदेश दिया और सच्चे सद्गुरु के लक्षणों का वर्णन किया । सच्चे सद्गुरु के न मिलने से शिक्षा ही अधूरी रह जाती है, और गुरु के बिना भक्ति और मुक्ति दोनों ही सम्भव नहीं ।

अत: निष्कर्ष यही कि नामदेव के गुरु माहात्म्य की अनुभूति ही कबीर में पूर्णरूपेण प्रतिध्वनित हुई है । यही सिक्ख गुरुओं की प्रेरक शक्ति बनी ।

"साधु - संगति"

भक्ति के उद्भावक तत्वों में गुरु के अतिरिक्त साधु संगति या सत्संग को परमतत्व की प्राप्ति के लिए सभी सन्तों ने आवश्यक माना है ।

- -

1. ऐसे सद्गुरुचे महिमान । म्हणोनि ब्रह्म त्या अधीन ।
   नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 1345
2. गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागूं पाय
   बलिहारी गुरु आपणे जिन गोविन्द दिया बताय । कबीर ग्रन्थावली
3. कबीर सतगुरु नां मिल्या, रही अधूरी सीख ।
   स्वांग जती का पहरि करि, घरि घरि माँगे भीख ।
   वही - गुरुदेव को अंग - सा0 27

भक्ति की प्रेरणा सत्संगति द्वारा ही मिलती है । इसलिए भक्ति क्षेत्र में साधु संगति का बड़ा महत्त्व है । अतः नामदेव और कबीर ने सत्संगति पर पर्याप्त बल दिया है ।

नामदेव उस दिन को धन्य मानते हैं जिस दिन साधु-संगति से हरिभक्ति उत्पन्न हो ।[1] साधु की संगति, सन्त से भेंट राम को प्रीतिपूर्वक भजन करने में ही मनुष्य जीवन की सार्थकता है ।[2] साधु की संगति नहीं करने से मनुष्य काम क्रोध, मोह की अग्नि में जलते रहते है ।[3] अतः नामदेव सन्तों के सहवास के लिए आतुर है । वे ऐसे "रामसनेही" से भेंट की अभिलाषा व्यक्त करते हैं, जिस से उनके मन में भावभक्ति उत्पन्न हो, हृदय में हरि के प्रति प्रेमभक्ति जागृत हो, मन की दुविधा मिटे तभी आत्मज्ञान हो और हरि का साक्षात्कार होता है । नामदेव अन्त में कहते हैं कि हरिदास की संगति से ही उनके मन की उदासी दूर होती है ।[4] वे एक पद में स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि यद्यपि छीपे की हीन जाति में जन्म लेने पर भी मुझे गुरु के उपदेश और साधु-संगति के प्रसाद से ही भगवान् के दर्शन सुलभ हो गये ।[5]

सन्त कबीर ने भी इस साधन को विशेष महत्त्व दिया है वे भी कहते हैं कि वही दिन भला समझो जिस दिन सन्त से भेंट हो, ऐसे सन्तों से दिन

---

1. हरि की भगति साध की संगति, सोई दिन धनि लेखौं ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 227
2. साध की संगति, सन्त सुं भेटा, प्रणवत नामा राम सेटा ।
   वही, पद- 14
3. काम क्रोध तृसना अति जरै, साध संगति कबहूं न करै । वही,
4. आज कोई मिलसी मुनो राम सनेही ।
   सब सुख पावे हमारी देही ।
   भावभगति मन में उपजावे । प्रेम प्रीति हरि अन्तरि आवे ।
   आपा पर दुविधा सब नासे । सहजे आतम ग्यान प्रकासे ।
   जन नामा मन भया उदास । सब सुख पावे मिले हरिदास ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 102
5. छीपे के घर जनमु दैला गुर उपदेस भैला ।
   सन्त के परसादि नामा हरि भेटुला । वही, पद- 151

छोड़कर मिलने से सभी पापों का नाश हो जायेगा ।[1] साधु संगति दूसरों की व्याधियों, कष्टों का हरण करती है पर असाधु की संगति तो आठों पहर की उपाधि है, सदा कष्ट देनेवाली होती है। अत: सत्संगति में रहने का उपदेश दिया ।[2] करोड़ो तीर्थों में जाने से भी वह पुण्य नहीं मिलता, हरिभक्ति और साधु संगति करना आवश्यक है ।[3] इस संसार में सत्संगति कभी निष्फल नहीं होती । चन्दन का कुआ बोना होने पर भी उसे कोई नीम नहीं कहेगा ।

साधु संगति की आवश्यकता का प्रतिपादन करते हुए उन्होंने सन्तों के लक्षण बताये है । सन्त नामदेव के सन्तलक्षण विषयक मराठी अभंगों का अध्ययन करने योग्य है ।

नामदेव सन्तों का लक्षण बताते हुए कहते हैं कि वे साधु देहभाव से उदासीन, सतत हरि के प्रेम में लीन रहते है ।[4] वे परोपकारी व पूजनीय[5] होते हैं । निरवैरता सन्तों का प्रधान गुण है ।[6] अत: ऐसे सन्तों से ही लेन-देन करो, सन्त की छाया व सन्त की माया है सत्संगति से ही गोविन्द की प्राप्ति होती है अत: कुसंगति को छोड़कर सत्संगति में रहने का उपदेश देते हैं ।[7]

---

1. कबीरा सोई दिन भला जा दिन संत मिलाहि ।
   अंक भरे भरि भेटिया, पाप सरीरौ जाहि ।
   कबीर ग्रन्थावली-साध कौ अंग - सा. 6
2. कबीरा संगत साध की हरे और की व्याधि ।
   संगत बुरी असाध की आठों पहर उपाधि । - कबीरवचनावली-सा. 313
3. मथुरा जावे द्वारिका भावे जावे जगन्नाथ ।
   साध संगत हरि भक्त बिन कछू न आवे हाथ ।वही, साध कौ अंग-सा- 3
4. संताचे लक्षण ओळखावया खूण । जो दिसे उदासीन देह भावा ।
   सतत अन्तर प्रेमाचा जिव्हाळा । वाचे वदे वाचाळा रामकृष्ण ।
   नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 369
5. पूजा दुं साधुजणा, हरि के अधिकारी ।
   बन लगि गोविन्द गाइये,वै पर उपगारी ।संत नामदेव की हिन्दी प.183
6. सबनि सुं निरवैरता,पूजा दुं ते साध । वही, साखी-10
7. सन्त सुं लैना सन्त सुं देना । सत संगति मिलि दुस्तर तिरना
   सन्त की छाया सन्त की माया । सत संगति मिलि गोविन्द पाया ।
   असत संगति माभा कबहू न जाई । सत संगति में रह्यौ समाई । वही,पद-32

कबीर साधु के गुणों का संक्षेप में एक ही साखी में वर्णन करते हुये निरवैरी, निष्काम, साईं के प्रति पूर्ण स्नेही तथा विषयों से अनासक्त गुणों से युक्त को सन्त कहते हैं ।[1] सन्त ज्ञानी होते हैं परोक्षज्ञानी सन्त विरला ही होता है। अतः साधुओं के ज्ञान की ओर ध्यान देना चाहिए, जाति की ओर नहीं ।[2] साधुओं का कोई समूह या संगठन नहीं, वे तो परोपकारी, निर्वैर भाव से प्रभु भक्ति करनेवालों का संगठन है । वह कोई विरक्त साधुओं की जमात नहीं ।[3]

सत्संग की दृष्टि से सन्त कबीर के "कुसंगति को अंग" "संगति को अंग", असाध को अंग, साध को अंग व साध साषीभूत को अंग, साध महिमा को अंग में संकलित साखियों के अध्ययन से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि उन्होंने साधुसम्मान को अधिक महत्त्व दिया अतः उसके पक्ष और प्रतिपक्ष का विस्तार से वर्णन किया ।

नामदेव और कबीर दोनों की ही दृष्टि में भक्ति के उद्भावक तत्त्व रूप में साधु महिमा का मुक्त कंठ से गान किया है ।

इन्हीं उद्भावक तत्त्वों के प्रभाव स्वरूप भक्त मन में भक्ति के अनुभाव स्वयं ही उद्भूत होते हैं ।

भक्ति के अनुभाव

बाह्याचारों से विरक्ति

भक्ति मार्ग में भक्त जब गुरु प्रसाद और साधु संगति के द्वारा भक्ति की ओर अग्रसर होता है तो भक्त-मन बाह्याचारों से विरक्त होने लगता है ।

---

1. निरवैरी निहकामता, साईं सेती नेह ।
   विषिया सूं न्यारा रहै सन्तनि का अंग एह ।
   कबीर ग्रन्था. - साध साषीभूत कौ अंग - सा. ।
2. जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिए ज्ञान
   मोल करो तलवार का पड़ा रहन दो म्यान
   वियोगी हरि - सन्त सुधासार - पृ. 151
3. सिंहों के लेहड़े नहीं, हंसों की नहीं पांत
   लालों की नहीं बोरियां साधु चले न जमात । वही - पृ. 150 .

इस विरक्ति के कारण धर्म के नाम पर प्रचलित, सभी बाह्याडम्बरों का विरोध करने लगता है । सन्तों व भक्तों की विरक्ति का अनुभाव विरोध रूप में व्यक्त हुआ है । साधना के नाम पर सभी धर्मों में जिन बाह्याडम्बरों व रूढ़ियों का प्रवेश हो गया था उन सबका इन सन्तोंने स्पष्ट रूप से विरोध किया ।

नामदेव और कबीरनेउस अनन्त , सर्वव्यापी परमात्मा को सीमित दृष्टिकोण से पूजा के स्थान विशेष में देखने की दृष्टि की आलोचना की ।

नामदेव कहते हैं कि उस ईश्वर की पूजा हिन्दू देवालयों में और मुस्लिम मस्जिदों में समझकर करते हैं पर नामदेव का ईश्वर तो मन्दिर व मस्जिद की सीमा से परे है, अतः भावरहित कोरी मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए कहते हैं एक पत्थरकेप्रति श्रद्धा भाव प्रकट करते हो तो दूसरे पत्थर पर पाँव रख उसे तुच्छ समझते हैं । यदि एक में देवत्व की अनुभूति है तो दूसरे में क्यों नहीं ? श्रद्धा प्रेम से की गई पूजा वह किसी की हो वही सेवा सही पूजा है।[2]

सन्त कबीर भी सन्त नामदेव के मत को मान्यता देते हुए उन्हीं शब्दों में मूर्तिपूजा के प्रति सीमित दृष्टिकोण का तीव्र खंडन करते हैं - यदि पत्थर की मूर्ति पूजने से परमात्मा मिल सकता है तो मैं पहाड़ की पूजा करूंगा । ऐसी मूर्ति की अपेक्षा वह चक्की को भली समझते है ।[3] उनका दृढ़ विश्वास है कि कोरी मूर्ति पूजा से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति सम्भव नहीं, मूर्तिपूजा करने पर भी माया का आकर्षण बना ही रहता है अतः कबीर प्रत्येक मानव के हृदय-मन्दिर में निवसित भगवान् को पूजने का उपदेश देते है । घट-घट वासी राम ही उन दोनों का उपास्य देव है ।

---

1. हिन्दू पूजे देहुरा, मुसलमान मसीत ।
नामा सोई सेविया जहाँ देहुरा न मसीत ।संत नामदेव की हि॰प॰- पद 208
2. एक पाथर किजे भाव, दूजे पाथर धरिये पाव ।
जो वो देव है तो उस भी देव, कहे नामदेव हरि की सेवा ।वही, पद-152
3. पाथर पूजे हरि मिले तो मैं पूजूं पहार ।
ताते ये चक्की भली, पीस खाय संसार । कबीर ग्रन्था॰
4. सेवे सालिगराम कूं माया सेती हात । वही,
भ्रम विध्वंसण कौ अंग - सा॰ 7

तत्कालीन परिस्थितियों में सन्तों द्वारा की गई मूर्तिपूजा के खंडन का एक विशिष्ट उद्देश्य था । उनकी कड़ी आलोचना का रहस्य था जिसे समझे बिना हम इन सन्तों के प्रति पूर्ण न्याय नहीं कर सकते ।

यद्यपि यह विश्व उस विराट् पुरुष का आकारयुक्त शरीर होते हुए भी मूर्ति उसकी प्रतीक मात्र है, उस प्रतीक मूर्ति को ईश्वर मानने पर भी वहाँ उपासना का सहयोगी अंश है, मूर्ति विराट् पुरुष नहीं । उस काल में लोग मूर्तिपूजा के इस रहस्य को भूलकर केवल प्रतीक मात्र को ही ईश्वर समझने लगे थे अतः सन्तों ने उस संकुचित दृष्टिकोण को बदलने के उद्देश्य से ही मूर्तिपूजा की कड़ी आलोचना की ।

मूर्ति को प्रतीक मात्र कहने से अभिप्राय यही है कि वह मूर्ति ईश्वर का जड़ रूप नहीं है अपितु जब मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा या शक्ति प्रतिष्ठा की जाती है तब वह उपास्य का परम चेतन स्वरूप रहती है । यदि ऐसा न हो तो उपासना तमाशा बन जायेगी, अभिनय मात्र रह जायेगी । मूर्ति के समक्ष उपासक हँसता है, रोता है, भाव-विभोर हो जाता है इसीलिए मूर्ति उपास्य का मूर्त रूप है । वह उपास्य ही है, उसका जड़ रूप नहीं । इस तरह मूर्ति के रूप में अनन्त ही सीमित होकर अनन्त गुणधर्म से सम्पन्न बना रहता है । उपासक का भाव स्वीकार करके अनन्त मूर्ति की सीमा में बैठ जाता है । उसका आह्वान स्वीकार करके अपने को मूर्ति में सीमित करके भी अनन्त शक्ति सम्पन्न बना रहता है । यह प्रतीक भी चिन्मय ही है । इसमें ब्रह्म के समग्र गुण रहते है । ब्राह्मी जीवन का क्रमिक विकास भी इसी मूर्ति के माध्यम से हुआ है । रामकृष्ण परमहंस तुलसी, सूर, मीरा सभी इसी जीवन के उदाहरण है । सगुणोपासक भक्त निर्गुण के उपासक भी थे, पर उनकी दृष्टि में सगुण प्रधान हो बैठा था । इसी प्रकार सब सन्त सगुणोपासक भी थे पर उनकी दृष्टि मुख्यतः निर्गुण पर लगी हुई थी । अतः डा: रामनिरंजन पाण्डेय के शब्दों में :-

"जब अनन्त की उपासना केवल मूर्ति की क्षुद्र सीमा के भीतर होने लगती है तब सन्त इस बात को नहीं सह सकता । यदि अनन्त की अनन्तता के रहस्य को समझकर मूर्तिपूजा की जाए तो मूर्ति केवल प्रतीकमात्र रहती है । उसके माध्यम से उपासना परम विराट की ही होती है । ऐसी ही स्थिति सन्तों को अभीष्ट होती है और जब कभी इस दृष्टिकोण का लोप होने लगता है तब वे सोए हुए उपासकों को कशाघात से जगा देते हैं यही उनकी कड़ी आलोचना का रहस्य ।[1] स्वार्थग्रस्त उपासक के लिये मूर्ति की सीमा उसके क्षुद्र स्वार्थों के कारण क्षुद्र हो जाती है । अकलुष अनुरागवाले ज्ञानी के लिए मूर्ति ही अनन्त निर्गुण ब्रह्म है । इसीलिए भारत में ज्ञानी सन्तों ने भी सगुणोपासना की । अत: सन्तों ने मूर्तिपूजा का खंडन एक विशिष्ट उद्देश्य से किया ।

बाह्याडम्बर पूर्ण पूजा को व्यर्थ बताते हुए नामदेव केवल राम नाम जप करने का उपदेश देते है वे योग, यज्ञ, तप, होम, नेम, व्रत सब को निरर्थक कहते हैं । नामदेव के मत में राजाराम निरंजन की सेवा ही बड़ा तीर्थ है । उसकी सेवा ही अड़सठ तीर्थों के पुण्य देनेवाली है ।[2] तो कबीर भी मन और हृदय को ही मथुरा और द्वारिका काशी मानते है । वहाँ उस परमदेव का स्थान है जिसमें प्रकाशित ज्योतितत्व को पहचानने के लिए कहते हैं ।[3]

शरीर शुद्धि के साथ मन की शुद्धि आवश्यक है । नामदेव कहते हैं कि यदि मन शुद्ध नहीं तो शरीर रूपी तुम्बी को अड़सठ तीर्थों में स्नान करने से कोई लाभ नहीं ।

---

1. रामभक्ति शाखा - पृ॰ 45
2. डा॰ मिश्र व गौर्य सं॰ - स॰ना॰हि॰प॰ - पद- 108
3. मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि ।
   दसवाँ द्वारा देहुरा तामैं जोति पिछाणि ।
   — कबीर ग्रन्थावली - भ्रमविधोंसण कौ अंग - सा॰ 10

भक्ति में मन की शुद्धि आवश्यक है । उसके बिना समस्त बाह्याचार आडम्बर ही है । रुद्राक्ष माला, जप मुण्डन आदि सभी धारण करते हैं पर उसका वास्तविक मर्म है मनकी शुद्धि । सींगी जटा विभूति लगा सिद्ध योगी कहलाते हैं पर नाथ के बोल का रहस्य नहीं जानते । ब्राह्मण वेद पढ़-पढ़ कर सुनाते है पर मन की भ्रान्ति उससे निराकृत नहीं होती । मुसलमान एक मास तक रोजा रख कलमा पढ़ते है पर जी का संहार कर हिंसारत रहते है । अतः नामदेव तत्कालीन सिद्ध जोगी, ब्राह्मण मुसलमान सभी को मनःशुद्धि का उपदेश देते है ।[1] पाखण्ड भक्ति पर राम नहीं रीझते[2] उनका साँई तो मनसा वाचा कर्मणा द्वारा की गई सच्ची भक्ति पर रीझता है ।[3]

कबीर भी व्रत,पूजा,नमाज,रोजा आदि को व्यर्थ कहते हैं कि जोगी वस्त्रों को रंग, कानों को फाड़ कर जटा धारण कर जंगल में धूनी रमा पत्थरों को पूजने लगे, पर वे अपना मन ब्रह्म के रंग में नहीं रंग सके । मन के भक्तिरंग में रंगाये बिना सब व्यर्थ है ।[4] सच्चा "जोगी" वही है जो मन को भक्ति रंग में रंगे । इसीलिए सन्तों ने कथनी और करनी की एकरूपता पर बल दिया । करनी के बिना कथनी बाह्याडम्बर ही है ।

---

1. रुद्राक्ष सजा जप माला मंडे । ताको मरम न जाने कोई ।
   आप न देखे और दिखावे । कपट मुक्ति क्या होई ।
   सींगी जटा विभूति लगावे । सबर सिद्ध कहावे ।
   ब्रह्मा पढ़ि चारिवेद सुनावे । मन की भ्रान्ति न जावे
   मास दिवस लग रोजा साधे । कलमा बाँग पुकारे ।
   मन में घाति जीव संघारे । नीच अलह के सारे ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - 64
2. पाखंड भगति राम नहीं रीझै ।
   वही, पद - 21
3. साँई मेरा रीझै साचि । झूठे कपट न जाई राचि । वही, पद- 26
4. मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपड़ा ।
   आसन मारि मन्दिर में बैठे ब्रह्म छाँड पूजन लागि पाथरा ।
   कबीर वाणी - पद 66

कथनी और करनी में एकरूपता ही आचरण की शुद्धता है । नामदेव और कबीर ने करनी के बिना कथनी की आलोचना की है । नामदेव के अनुसार भक्त और भगवान् में अन्तर माननेवाले मूर्ख नर है । जो परमात्मा को छोड़कर वेदविधि से सब कार्य करता है वह जल भुन कर मर जाता है । इस संसार में बड़ी-बड़ी बातें बनानेवाले अधिक हैं पर विरला ही जन ऐसा है जो कथनी और करनी में सामंजस्य रखता है ।[1]

कबीर ने भी ऐसे व्यक्तियों को पशुवत् ही कहा है ।[2] वे अन्य साखी में दोनों में अन्तर को स्पष्ट करते हुए कथनी को खाँड के समान मीठी और करनी को ~~विष करनी को~~ विष कहते हैं । यदि मनुष्य कथन की अपेक्षा करनी करे या आचरण पर ध्यान दे तो वह विष भी अमृत हो जायेगा ।[3] क्योंकि कथनी और करनी की एकरूपता से ही भक्त परब्रह्म को पा सकता है ।[4]

सन्तों ने अपनी भक्ति को "भावभक्ति" कहा है ।

- -

1. भगवंत भगता नहीं अन्तरा ।
   द्वै करि जाने पसुवा नरा ।।
   छाडि भगवंत बेद विधि करै ।
   दाझै भूझे जाने परे ।।
   कथनी बदनी सब कोई कहै
   करनी जन कोई विरला रहै ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 117
2. जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालै नांहि ।
   मानिष नहि ते स्वान गति, बांध्या जमपुर जांहि ।
   कबीर ग्रन्था0 – 3 - पृ. 38
3. कथनी मीठी खांड सी करनी विष की लोय ।
   कथनी तजि करनी करै विष ते अमृत होय ।।
4. जैसी मुख तै नीकसै, तैसी चालै चाल ।
   पारब्रह्म नेडा रहै, पल मैं करै निहाल ।
   कबीर ग्रन्थावली – 2 - पृ. 38

भावभक्ति

सन्तों का भाव शब्द प्रेम का पर्यायवाची भी है, उनकी अन्तर्मुखी साधना, मानसी पूजा का द्योतक है इसी कारण भावशब्द को भक्ति के पूर्व प्रतिष्ठापित किया जो पूर्ण सार्थक है ।[1] वास्तव में रागात्मिका भक्ति का सहजीकृत रूप ही भावभक्ति है । सन्तों ने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि भगवान् की भक्ति भावना और विचार के साथ करनी चाहिए । नामदेव और कबीर ने अपनी भक्ति को "भावभक्ति" कहा है ।

भावभक्ति विश्वास के द्वारा ही नामदेव आत्मज्ञान को प्राप्त कर सके हैं ।[2] और इसी से उनका अन्तर उस अन्तर्यामी के प्रेम रस से पूरित है और वे संसार से विरक्त हो गये हैं ।[3] उस प्रेमभक्ति के हृदय में जागृत होने पर वे जीवन के चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सभी तुच्छ मानते हैं ।[4] इसलिए भगवान् से मुक्ति की अपेक्षा भक्ति की याचना करते हैं ।[5] इसी भावभक्ति को कबीर ने "हरि सूं गठजोरा" कहा है ।[6] भावभक्त कबीर भी जप, तप, स्नान, व्रत, दान, संयम सभी को निरर्थक कहते हैं । प्रधान है,

---

1. डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत-
   हिन्दी की निर्गुण काव्य धारा व उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि ।
2. भावभगति मन में उपजावै । प्रेम प्रीति हरि अन्तरि आवै ।
   आपापर दुविधा सब नासै । सहजै आतम ग्यान प्रकासै ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 102
3. अभि अन्तर रता रहै बाहरि रहै उदास ।
   नाम कहै मैं पाइयौ भावभगति विश्वास ।
   वही, साखी - 3
4. अर्थ, धरम, काम की कहा मोषि मांगै
   दास नामदेव प्रेम भगति अन्तरि जो जागै । वही, पद-5
5. भगति आपि मेरे बाकुला । तेरी मुक्ति न मांगू हरि बीठुला ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 49
6. कहै कबीर तन मन का ओरा ।
   भाव भगति हरि सूं गठजोरा ।
   कबीर ग्रन्थावली = पद- 213

भाव है और मुक्ति है भावभक्ति ।[1] और विश्वास के बिना भ्रम का नाश नहीं होता और हरिभक्ति के बिना मुक्ति नहीं[2] वे मुक्ति के आकांक्षी है अतः भक्ति को "मुक्ति की नसैनी" कहते हैं उनका लक्ष्य है मुक्ति ।[3]

इस तरह नामदेव की भावभक्ति का लक्ष्य है भक्ति और कबीर का लक्ष्य है मुक्ति । अतः कबीर भक्ति को मुक्ति प्राप्ति का उपाय मानते है ।

निष्कामता

सन्तों की भावभक्ति का सबसे प्रधान व विशिष्ट भाव है निष्कामता[4] कामना से भक्ति कलुषित हो जाती है अतः गीता में निष्काम कर्म को प्रधानता दी गई और श्रीमद्भागवतपुराण में अहैतुक या निष्काम प्रेम को ईश्वरभक्ति कहा गया है ।[5]

नामदेव की भक्ति में निष्काम भावना पर अति बल दिया है । वे नानाविधियों से कृत भावभक्ति में उन्हें फल की आशा नहीं, केवल ब्रह्म के प्रति लौ अर्थात् लगन बनी रहने की इच्छा है यह लौ ही उनकी भावभक्ति है । अटूट लौ भी निष्कामता से ही सम्भव है ।[5] वे राम नाम को ही निष्काम

---

1. क्या जप क्या तप क्या संयम क्या व्रत क्या स्नान
   जबलग युक्ति न जानिये भावभक्त भगवान् ।
   कबीर ग्रन्थावली - पद- 121
2. भावभक्ति विश्वास बिन, कटैन संशै मूल ।
   कहै कबीर हरि भक्ति बिन, मुकति नहीं रे मूल ।
   वही, बैपदी रमैनी - पृ. 245
3. भक्ति न सैनी मुक्ति की ।   वही, पद-
4. अहेतुक्यव्यवहिता या भक्ति : पुरुषोत्तमे ।
   भागवत पुराण - 3/29/22
5. भावभक्ति नानाविधि कीन्ही, फल का कौन करी ।
   केवल ब्रह्म निकट ल्यौ लागी । मुक्ति कहा बापुरी ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 8

भक्ति मानते हैं ।[1] इस नाम-स्मरण के द्वारा ही वे निष्काम हो सहज समाधि की दशा में पहुँच गये हैं ।[2]

कबीर भी निष्काम भाव से ही भक्ति का प्रतिपादन करते हुये कहते हैं कि निष्काम देव की भक्ति निष्काम भाव से ही करनी चाहिए भक्ति में सकामता निष्फल होती है ।[3] अतः कबीरदास पुकार कर कहते हैं कि सकामता का भ्रम छोड़कर भक्ति करनी चाहिए । कबीर के "निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग" और "कामी नर कौ अंग" में इसी निष्काम भावना पर बल दिया है ।

सन्तों की भावभक्ति के केन्द्र बिन्दु नाम और प्रेम तत्त्व हैं ।

नामभक्ति

नाम-स्मरण भक्ति का प्रमुख अंग है । श्रीमद्भागवत में नाम स्मरण को भक्ति का एक प्रकार कहा गया है ।[5] भक्ति के क्षेत्र में नाम साधना अति प्राचीन है ।

---

1. नामा कहै राम बोलै, रामनाम निहकरमा ।
   वही - पद- 116
2. गुरुकी नामा भए निहकामा, सहज समाधि समाने रे ।
   वही, पद- 66
3. जब लगि भक्ति सकामता, तब लगि निष्फल सेव ।
   कहै कबीर वै क्यूं मिलै, निहकामी निजदेव
   कबीर ग्रन्थावली - निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग - सा. 10
4. और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निष्कर्म ।
   कहै कबीर पुकारि कै, भक्ति करौ तजि भर्म ।
   कबीर ग्रन्थावली - पृ. 11
5. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
   अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।
   भागवत पुराण 7/5/52

इन नामोपासक सन्तों की कविता का उद्देश्य तत्वचिकित्सा या तत्व प्रतिपादन करना नहीं था पर इन्होंने नाम-स्मरण को इतना अधिक महत्व दिया है कि हम उनकी साधना को नामभक्ति की साधना और उन्हें नामोपासक कह सकते हैं । नामोपासना ही इनकी साधना का मूलमन्त्र रही है ।

हमारे आलोच्य कवि नामदेव के जीवन का उद्देश्य विठ्ठल की अनन्यभक्ति और वारकरी पंथ का प्रचार करना था । इस वारकरी सम्प्रदाय के तत्व ज्ञान की पृष्ठभूमि को सन्त ज्ञानेश्वर अमृतानुभव, ज्ञानेश्वरी, और चांगदेव पासष्ठी, जिन्हें प्रस्थानत्रयी के समान [illegible] माना जाता है, ग्रन्थ लिखकर पुष्ट किया । उस तत्वज्ञान का प्रसार नामदेव ने किया, अतः श्री के॰आर॰र॰मुंडणकर के शब्दों में ज्ञानदेव सन्त मण्डल के तत्ववेत्ता और नामदेव सच्चे प्रणेता थे ।[1] सन्त नामदेव ने पंथप्रसारक की भूमिका को निभाते हुए नामभक्ति पर मराठी व हिन्दी में अनेक अभंग व पद लिखे हैं वे उनके तत्व विचार की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है ।

नामदेव कीर्तन परम्परा के पुरस्कर्ता माने जाते हैं । वे जनता के मध्य खड़े होकर ताल और मृदंग के साथ कीर्तन करते हैं और पुराणों के उद्धरण व उदाहरण देते हुए अपने अभंगों की व्याख्या करते थे । इस कीर्तन पद्धति को "निरूपण" भी कहते हैं ।[2] इनके कीर्तन की उस युग में बड़ी प्रसिद्धि थी क्योंकि तत्कालीन महान् सन्त ज्ञानेश्वर, निवृत्तिनाथ आदि श्रेष्ठ व ज्येष्ठ सन्त इनके कीर्तन में सर्व सामान्य जनता के साथ सम्मिलित होते थे और उसका आनन्द उठाते थे । इसी कीर्तन के रंग में तल्लीन हो नाचते हुए ज्ञानदीप जलाने की आकांक्षा से[3] सर्व सामान्य जनता को नाम साधना का सर्वसुलभ मार्ग दिखाने

---

1. नामदेव दर्शन - पृ॰ 631 = { 631 }
2. डा॰ चिनयमोहन शर्मा - हिन्दी को मराठी सन्तों की देन - पृ॰ 76
3. नाचूं कीर्तनाचे रंगीं, ज्ञानदीप लावूं जगीं ।
   नामदेव गाथा - मराठी अभंग 1494

वाले सन्त नामदेव ही पहले कवि है, जिन्होंने कबीर से पूर्व ही इस साधन रूप नाम-साधना को तात्त्विक रूप दिया और "नामवेद" की स्थापना की ।

आकारला देव नामरूपा आला ।
म्हणोनि स्थापिला नामवेदा ।[1]

सन्त ज्ञानदेव ने भी नाम-महत्त्व की सिद्धि के लिए ही "हरिपाठ" की रचना की । वे नाम को ही भक्ति में एकमात्र श्रेष्ठ तत्त्व मानते हैं ।[2] वारकरी सन्तों ने नामसंकीर्तन को इतना महत्त्व दिया कि उसे तत्त्वरूप की मान्यता मिली ।

नामदेव का "नामवेद"

नामदेव की नामस्मरण पर उत्कट श्रद्धा थी । उन्होंने परमपद प्राप्ति के ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग के विभिन्न साधनामार्गों में से भक्ति के नाम स्मरण रूप को अत्यन्त सुलभमार्ग[3] मानकर ही बहुजनहिताय बहुजनसुखाय बताया । नामदेव के शब्दों में :-

नामदेव कहे कहूँ आइये न जाइये
अपने घर राम बैठे गाइये ।[4]

मराठी और हिन्दी दोनों में ही नाम महिमा पर सबसे अधिक अभंग व पद लिखकर नामदेव ने "नामा म्हणे" नामा भणे का इतना विस्तार किया मानों अपने नाम की सार्थकता को सिद्ध करने के लिए ही किया ।

---

1. नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 1252-2
2. नामापरते तत्त्व नाही रे अन्यथा ।
   ज्ञानदेव - अभंग - 572
3. रे नाम सोपेरे । नामदेव गाथा - मराठी अभंग
4. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद 29

सन्त नामदेव ने उस परब्रह्म या नामब्रह्म का स्वरूप "नाम सोचि रूप, रूप सोचि नाम"[1] तथा हिन्दी में राम सो नामा, नाम सो रामा[2] कह नामरूप परब्रह्म की अभिन्नता बताई है । नामवेद में ही देव साकार हुआ है अतः नाम ही सच्चा वेद है ।[3] नाम को वेद तुल्यत्व प्रदान करते हुए भी भक्त को इस बात का स्मरण कराते हैं कि वह ईश्वर भाव और प्रेम का भूखा है यह भाव और प्रेम केवल नाम में ही है ।[4] वास्तव में नाम ही देव है ।[5]

नामरूपातीत अनामब्रह्म ही जीवों द्वारा नाम से विभूषित किया गया वह परब्रह्म निर्विकल्प चैतन्य है । वास्तव में नाम ही आद्य तत्त्व है ।[6] वह अनाम ही नाम है, दोनों में कोई भ्रम या भेद नहीं, द्वैतभावना नहीं, अतः सर्व नामभेदों से ऊपर उठकर " ॐ " का जाप करने का उपदेश दिया ।[7] तुलसीदास जी ने "नामरूप दुई ईश उपाधि" अर्थात् नामरूप दोनों ईश की उपाधिमात्र है ।

अत नाम तत्त्व का व्यापक अधिष्ठान है । आत्मस्वरूप परिचय से ही नाम व्यापक हो जाता है । जब भक्त अपने भीतर ब्रह्मस्वरूप की अनुभूति कर ले अर्थात् सोऽहं की अनुभूति से ही उस निर्गुण चैतन्य शक्ति के दर्शन होते हैं ।[8]

---

1. नामदेव गाथा - मराठी अभंग - 680
2. नामदेव गाथा - हिन्दी पद- 2114
3. देव अकारला नामरूपा आला । म्हणोनि स्थापिला नामवेदी ।
   नामदेव गाथा, मराठी अभंग - 680
4. भावाचा आधुका, भुकेला भक्तिसुखा । सापडला सुखा नामासाठी ।
   प्रेमाचा जिव्हाला नामाची आवडी । क्षण एक सोडी संग त्याचा ।
   वही, अभंग- 693
5. नाम तोचि देव ।
6. आकारक नाम जीवाने ठेविले । शिवाने ते केले निर्विकल्प ।
   जीव शिव दोन्ही विराले ज्यामाजी । ते नाम सहजी आद्य आहे ।
   नामदेव गाथा - म० अभंग - 689
7. द्वैताद्वैत तेथे नैसे जाणपण । जेथे हरपोन गेले सर्व
   नामदेव म्हणे अनाम ते नाम । नाना नानाभ्रम तेथे दुजा । वही, अभंग-640
8. व्यापक ते नाम तेव्हाच होईल । जेव्हा ओळखेल मी पणासी ।
   वही - अभंग - 606

सद्गुरु की कृपा से ही नाम तत्व को जाना जा सकता है।[1]

"अमृताहूनि गोड नाम तुझे देवा" नामदेव नाम को अमृत से भी अधिक मधुर कहते हैं ।[2] और इसी मधुरता का आस्वादन करानेवाली नामदेव की वाणी अमृत की खान कही गई है ।[3]

मराठी अभंगों में वर्णित इस नामवेद का सार सूत्र रूप में अनेक हिन्दी पदों में अभिव्यक्त हुआ है । नामदेव कहते हैं, नाम ही सार पदार्थ है ।[4] नाम में असीम सामर्थ्य है।[5] नाम ही महामंत्र है ।[6] नाम ही निर्मल निर्वाण पद है । नाम से ही भवसागर से निस्तार होता है ।

नाम तत्व

नाम तत्व की तात्त्विक चर्चा करते हुए सभी सन्तों ने नाम, राम और रामनाम का अधिक प्रयोग किया है । "हरि अनन्त हरिकथा अनन्त" में विश्वास रखनेवाले सभी भक्तों ने परम्परागत अनेक नामों का प्रयोग किया है । इन भगवद्नामों में राम ही अधिक मान्य है ।

---

1. सद्गुरुवाचुनी नाम न ये हाता ।
   नामदेव गाथा - अभंग - 820
2. नाम है अमृत भक्तासी लाधले -
   वही, अभंग- 804
3. नामयाची वाणी अमृताची खाणी ।
   नामदेव दर्शन में प्रकाशित लेख -
   नामदेवांचा नामवेद - श्री विलास अनन्त बोंडे ।
4. सार तुम्हारा नाँव है, झूठा सब अनेक संसार
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद 51
5. राम नाम तुम्ही पददाता ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद-55
6. जपि राम नाम महामंत्र - वही, पद- 86

माण्डूक्योपनिषद् में ओंकार मात्र एकाक्षर ब्रह्म कहा गया है ।[1] गीता में भी ओमित्येकाक्षर ब्रह्म कहा है ।[2] योगसूत्र में ब्रह्म का वाचक ओंकार ही बताया है ।[3] सन्तों ने इस ओंकार शब्द को मानते हुए उसे "सार शब्द" या "सार" द्वारा व्यक्त किया है और राम नाम से उसकी अभिन्नता मानी है ।

यद्यपि नामदेव के हिन्दी पदों में ओंकार का उल्लेख नहीं, पर मराठी पदों में उन्होंने ओंकार का मूल रामनाम को कहा है । केवल रामनाम ही परब्रह्म है ।[4a] सन्त कबीर भी समस्त सृष्टि का मूल ओंकार को ही मानते हैं ।[4b]

नामदेव के शब्दों में रामनाम ही परमतत्व है ।[5] वही सकलभुवन का तत्वसार है[6] तो कबीर भी नामदेव के शब्दों में ब्रह्मा, शिव की साक्षी देते हुए रामनाम को ही सारतत्व कहते हैं ।[7] इसी त्रिलोक व्यापी नाम तत्व रूपी तिलक को धारण कर वे अपने को सौभाग्यशाली मानते हैं ।[8] इस सार तत्व के प्रति इन दोनों सन्तों की नामभक्ति भावोन्मुखी है । वे मन, वचन, कर्म से नामस्मरण का उपदेश देते हैं । नामदेव कलियुग में केवल नाम को आधार कहते हैं[9] तो कबीर भी हरिनाम के भजन को भक्ति कहते हुए उसे ही स्मरण का सार कहते हैं ।[10]

---

1. ओमित्येकाक्षरमिदं सर्वं । माण्डूक्योपनिषद् मंत्र ।
2. श्रीमद्भगवद्गीता - अ. 8 श्लोक - 13
3. तस्य वाचकः प्रणवः । योग सूत्र 27

4.a नामा म्हणे राम ओंकाराचे मूल । परब्रह्म केवल रामनाम ।
नामदेव गाथा - मराठी अभंग- 660

4.b. ओम्-कार आदि है मूला । कबीर ग्रन्थावली - पृ. 244

5. रामनाम जपि लीजै । परमतत्त्व है सोई ।संत नामदेव की हिं.प. पद-89
6. वही, पद-1
7. कबीर कह मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस ।
रामनाम ततसार है, सब काहू उपदेश । क0ग्रं0-सुमिरन को अंग-सा. 2
8. तत्त तिलक तिहूँ लोक में, रामनाम निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार । वही, सा. 3
9. सार तुम्हारा नांव है झूठा सब संसार ।
मनसा वाचा कर्मणा, कलि केवल नांव आधार । वही,
10. भगति भजन हरिनाउँ है दूजा दुक्ख अपार ।
मनसा वाचा कर्मणा, कबीर सुमिरन सार। क0ग्रं0 सुमिरन को अंग-सा. 4

इस रामनाम तत्व के रहस्य कोई विरला ही जान पाता है। नामदेव कहते हैं कि नाद, वेद पुराण कोई भी रामनाम के मर्म को नहीं समझ सके हैं। पण्डित वेदों की भाषा में, उस रामनाम के रहस्य को बताने का प्रयत्न करते हैं पर नामदेव स्वानुभव के आधार पर कहते हैं कि वे तो केवल राम को ही जानते हैं।[1] वही उनका लक्ष्य है। इसी नाम के द्वारा उन्हें परमार्थ की प्राप्ति हुई।[2] अन्य एक पद में नामदेव अटल विश्वास से कहते हैं कि राम के नाम का कोई निशान या नगाड़ा निरन्तर बजा करता है जिसका भेद किसी को ज्ञात नहीं।[3]

सन्त कबीर भी राम नाम के नगाड़े की निरन्तर ध्वनि को श्रवण कर "राम के नाँइ नीसाण बागा, ताका मरम न जाणै कोई" कह नामदेव की अनुभूति की पुष्टि वे करते हुए स्पष्ट ॠ कहते हैं कि राम नाम की महिमा सभी बखानते है पर उसका मर्म कोई नहीं जानता।[5] इस संसार में केवल मात्र शब्द निरंजन, रामनाम ही सत्य है।[6]

---

1. धूम ते वक्ता धूम ते सुरता
 प्राणनाथ की नीच न लेता।
 नाद, वेद सब गालि पुरानी।
 रामनाम को मरम न जानी।
 पण्डित होइ सो वेद बखाने।
 मूरिष नामदेव राम ही जाने।
 सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पृ- 10
2. अपना पयाना राम अपना पयाना।। वही, पद- 11
3. रामनाम नीसाण बागा। ताका मरम को जाणै भागा। वही, पद-183
4. कबीर ग्रन्थावली, पद- 220
5. रामनाम सब कोई बखाने, राम नाम का मरम न जाने।
 कबीर ग्रन्थावली - पद - 218
6. कहे कबीर यहु तन काचा, सबद निरंजन रामनाम साचा।
 वही, पद- 142

दोनों ही कवियों ने नामतत्व को अनुपम धन कहा है ।

सन्त नामदेव के लिए रामनाम ही खेती-बाड़ी है । एक ऐसा अनुपम धन जिसे तस्कर चुरा नहीं सकते । नाम-तत्व तो निरन्तर प्रेम से बढ़ता है।[1] उस धन की प्राप्ति होने पर आठ सिद्धियाँ और नवनिधियाँ भी भक्त का निहोरा करती हैं ।[2]

कबीर का सर्वस्व भी हरिनाम है वह उस धन की विशेषताएँ बताते हुए कहते हैं कि वह धन गाँठ में बाँधा नहीं जा सकता और न बेचा ही जा सकता है । नाम को उन्होंने भी खेती-बाड़ी कहा है । नाम ही सेवा,पूजा है, नाम ही भाई बन्धु है, अन्तिम समय में सहायक यही नाम तत्व है ।[3] अत: रामनाम न लेनेवालों को "राम बिना धिग्र धिग्र नर-नारी" कह धिक्कारते हैं ।

इस तरह सन्त नामदेव और कबीर की नाम-तत्व सम्बन्धी धारणा में अद्भुत साम्य है । नाम ही राम है, नाम को उन्होंने सार, शब्द, सारतत्व कहा है । ओंकार को मूलमन्त्र माना है । उस रामनाम का रहस्य अनिर्वचनीय है, वह अनुपम धन है ।

---

1. राम नाम खेती राम नाम बारी । हमारे धन बाबा बनवारी ।
   या धन की देखहु अधिकाई । तस्कर हरै न लागै काई ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-2

2. राम सो धन ताको कहा अब थोरो ।
   अठ सिधि नवनिधि करत निहोरो ।
   वही, पद- 3

3. सो धन मेरे हरि को नाऊ, गाँठि न बाँधौ बेचि न खाऊँ ।
   नाऊं मेरी खेती नाउं मेरी बारी, भगति करौ सरनि तुम्हारी ।
   नाउं मेरे सेवा नाउ मेरे पूजा, तुम्ह बिन और न जानै दूजा
   नाउं मेरे बन्धु बाँधव मेरे भाई, अन्त की बिरिया नाव सहाई ।
   कबीर ग्रन्थावली, पद- 333

नाम साधना

नाम साधना ही इनके जीवन का परमलक्ष्य थी अत: ये सन्त कवि नामतत्व के महत्व का गान मात्र करके ही नहीं रह जाते अपितु स्वानुभव के आधार पर कहते है कि नाम साधना ही उनके जीवन का परमलक्ष्य बन गई है। सन्त नामदेव ने इस सम्बन्ध में अपने अनुभव का वर्णन इस प्रकार किया है "मैं जाति पाँति के बखेड़े से दूर दिन-रात केवल राम-नाम का जप करने में ही लगा रहता हूँ। मेरा मन "गज" और जीभ कैंची है। जिसकी सहायता से मैं यम के बन्धन काटता हूँ। अपना व्यावसायिक दर्जी का काम करते हुए भी मुझे भगवन्नाम विस्मरण नहीं हो पाता है। आत्मारूपी सुई में प्रेम का धागा पिरोकर मैं नाम-साधना में लीन हूँ।[1] नाम साधना उनके जीवन का अनिवार्य अंग बन गई है। इस नाम के प्रति नामदेव का अनन्य प्रेम है जिन्हें उन्होंने अनेक उदाहरण देकर व्यक्त किया है। वे कहते हैं कि रामनाम में मेरा चित्त ऐसा अनुरक्त हो गया है जैसे सुनार का मन तुला में रखे हुए सोने में। बच्चे को पालने में सुलाकर काम में लगी हुई माँ का पूर्ण चित्त बालक में, पतंग उड़ानेवाले का ध्यान डोरी में, पानी भर ले जाने वाली स्त्री का ध्यान गागर में लगा रहता है वैसे ही काम करते हुए उनका ध्यान प्रति क्षण नाम में ही लगा रहता है।[2]

---

1. का करौ जाती का करौ पाती। राजाराम सेउं दिन राती।
मन मेरा गज जिम्या मेरी कती। राम रमे काटौ जम की फासी।
अनन्त नाम का सीउं धागा। जा सीजत जम का डर भागा।
सीवनी सीउं हो सीउं ईव सीउं। राम बिना हूं कैसे जीउं।
सुरति की सुई प्रेम का धागा। नाम का मन हरि सुं लागे।
सन्त नाम-देव की हिन्दी पदावली, प- 18
2. ऐसे मन रामनामे वेधिला। जैसे कनक तुला चित्त राखिला।
आनिले कागद साजिले गुडी, आकाश मण्डल सोडिला।
पचजना सुं बात बतउवा, चित्त सुं डोरी राखिला।।
आनिले कुम्भ भराइले उदिक, राजकुंआरि पुरंदरियै।
हसत विनोद देत करताली, चित्त सुं गागरि राखिला।
मंदिर एक द्वार दस जाके गऊ चरावन छालिला।
पांच कोस थै चांर फिरि आवै, चित्त सुं बाछा राखिला।
भगत नामदेव सुनो त्रिलोचन, बालक पालनि पोढिला।
अपने मन्दिर काज करती, चित्त सुं बालक राखिला। वही, पद-19

इस नाम के प्रति उनके मन में वैसी ही लालसा वैसी है, विरह की व्याकुलता है जैसी पानी के बिना मछली, बछडे के बिना गाय व्याकुल रहती है। नामदेव की उस मुरारी के प्रति अनन्य प्रीति है। जैसे विषयी नर का मन सदा पर नारी में अनुरक्त रहता है वैसी ही नामदेव की प्रीति राम नाम के प्रति है।

नाम-स्मरण की साधना को उत्कृष्ट साधन माना है। राम नाम की बराबरी होम, तप, दान और तीर्थ नहीं कर सकते।[1] सच्चे मन से हरि का नाम लेने का उपदेश देते हैं। अन्य एक पद में नाम की महिमा का विस्तार से बखान करते हुए नामदेव कहते हैं कि कोडों बार वेद-पठन, समस्त शास्त्रों का ज्ञान, अठारह पुराणों का पठन करोडों कूपों का उत्खनन, करोडों कन्याओं का कन्यादान, करोडों यज्ञों से भी श्रेष्ठ रामनाम है। इनमें से कोई भी रामनाम की समता नहीं कर सकता इस संसार में केवल मात्र नाम ही निर्मल है जिसने लाखों पतितों का उद्धार किया। गज, गणिका, अहिल्या अजामिल, प्रह्लाद सभी नाम के प्रताप से भवसागर से पार हुये।[2]

---

1. बानारसी तपु करै उलटि तीरथ मरै।
   अगिन दहै काइआ कलपु कीजै॥
   असुमेध जगु कीजै सोना गरभदानु दीजै।
   रामनाम सरि तऊ न पूजै।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 159
2. सुनि भई महिमा नाम तणीं। नारदा सतगुरु पासे जो मैं सुणी।
   कोटि कोटि बार जो पढिये वेद। सकल सास्त्र को लीजे भेद।
   पुराण अठारह को त जोइ। रामनाम समि तुले न कोई।
   कोटि कोटि कूप खनावै बाइ। कोटि कोटि कन्या दे प्रणाद।
   कोटि कोटि बार जो कीजे जागि। तुलैन राम सहस्त्र मैं भागि।
   गजगणिका गौतम की नारी। मूमल नाम पशी भी हरी।
   पतित अजामिल सरणे गयौ। भाव कुभाव जिनि हरि नाम लयौ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद - 196

नामदेव की भान्ति नाम के प्रति अनन्य प्रीति, व्याकुलता की अनुभूति का वर्णन सन्त कबीर के काव्य में संक्षेप में मिलता है । कबीर भगवान के प्रेम में व्याकुल है पर नामदेव नाम के विरह मे ।

नामदेव की नाम के प्रति उत्कट श्रद्धा पूर्ण विवेचन के आधार पर कह सकते हैं कि नामदेव की साधना नामभक्ति की साधना है, नाम ही उनका साध्य भी है और साधन भी । जब कि सन्त कबीर की साधना प्रेमभक्ति मूला है उनकी भक्ति का साध्य व साधना प्रेम है । नामदेव के काव्य में प्रेम सहायक तत्त्व है, साधन है । यही कारण है कि नामदेव ने नाम को प्रेम की अपेक्षा अधिक प्रधानता दी है । ~~जिसका विवेचन "प्रेम भक्ति" (अगले पृष्ठों) में किया जायेगा~~ ।

प्रेम भक्ति

नाम-स्मरण ही प्रेम की प्राप्ति कराता है, नाम का प्राप्तव्य प्रेम है, अतः मध्ययुगीन सगुण और निर्गुण सभी भक्तों की साधना का केन्द्र बिन्दु प्रेम तत्त्व ही रहा । इसे आनन्दकेलि, प्रीति, प्रेम, प्रेमलीला आदि नाम भी दिये है । सन्तों की भावभगति में प्रेमभाव को प्रधान, मानते हुए उसे "प्रेमभगति" शब्द से व्यंजित किया है । सभी आचार्यों ने प्रेम को प्रधानतत्व माना है । भक्त श्रेष्ठ नारद ने भक्ति को "परमप्रेमरूपा" कहा है । वास्तव में प्रेम ही भक्ति का उत्प्रेरक और प्राणभूत तत्त्व है । अतः प्रेमभक्ति सबसे श्रेष्ठ मानी गई है ।

प्रेमभक्ति में अनन्यभाव या एकनिष्ठता, विरह, मिलन, आत्मसमर्पण आदि भावों की अभिव्यक्ति हुई है ।

सन्त नामदेव और कबीर दोनों की भक्ति परमप्रेमरूपा नारदीभक्ति ही है जिसमें उपरोक्त तत्त्वों की ही अभिव्यक्ति हुई है ।

नामदेव और कबीर "रामसनेही" के संग के लिए आतुर है। जिसके संग से मन में भावभक्ति और हृदय में प्रेमभक्ति उत्पन्न हो, तभी द्वैतभाव का नाश हो सहज आत्मज्ञान का प्रकाश हो जायेगा। यह भावभक्ति भी प्रेम ही है। "सा परा गति:" अर्थात् प्रेम ही भक्ति की पराकाष्ठा है। सन्त नामदेव की दृष्टि में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थ भी उस प्रेमभक्ति के समक्ष तुच्छ हैं। 2

ढाई अक्षर युक्त प्रेम के अध्येता को सुपण्डित कह कबीर भी प्रेमभक्ति के हिंडोले में झूलने की इच्छा प्रकट करते हैं। यही हिंडोला सन्तों का विश्राम स्थल है।[3] रामसनेही के लिए आतुर है।[4] यही नहीं अपितु कबीर शरीर की सार्थकता भी प्रेम में ही मानते हैं।4 प्रेम रूपी रसायन की एक बूंद में समस्त शरीर को कंचन बनाने की क्षमता है।[5]

अनन्य भाव

प्रेम की एक-निष्ठता या अनन्यभाव को अनेक उदाहरणों द्वारा समझाया है। दोनों ही एकनिष्ठ प्रेम का आदर्श सती या पतिव्रता को ही मानते हैं।

---

1. आज कोई मिलसी मुने राम सनेही
   तब सुख पावे हमारे देही।
   भावभगति मन में उपजावे। प्रेम प्रीति हरि अन्तरि आवे।
   आपा पर दुविधा सब नासे। सहजै आतम ज्ञान प्रकासे।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली, पद- 102
2. वही, पद- 3 देखिए पृ॰
3. प्रेमभगति हिंडोलना, सन्तनि कौ विश्राम। कबीर ग्रन्था॰ पद- 18
4. जा घट प्रेम न संचरै सो घट जान मसान
   जैसे खाल लोहार की सांस लेत बिनु प्राण।
   कबीर ग्रन्थावली (वचनी) - दोहा 107
5. सबै रसायण मैं किया, हरि सा और न कोई।
   तिल इक घट मैं संचरै तौ सब तन कंचन होई। कबीर ग्रन्थावली (वचनी) - दोहा 117.

"राम की भगति दुहेली रे बापा"[1] कह नामदेव प्रेम भक्ति की साधना की कठिनता को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि पतिव्रता के समान अनन्य भाव से भक्ति करनेवाले भक्तों को ही वश में भगवान होते हैं ।[2] वे अन्य एक पद में नारद की साक्षी देते हुए प्रेम में द्वैतभाव का निराकरण करते हुए कहते हैं कि प्रीति से भगवान् भक्तों के वश में हैं । अतः प्रीति ही वैष्णवभक्त की प्रिय धरोहर है ।[3] जैसे विषयासक्त कामी नारी की दृष्टि पर-नारी पर, पासा खेलनेवाले पसवारा की दृष्टि कौड़ी पर, सुनार की दृष्टि सोने की चोरी पर एकनिष्ठ होती है वैसे ही भक्त मन राम में चिपटा रहे भक्त को भी राम के प्रति एकनिष्ठ भक्ति होनी चाहिए । नामदेव ऐसे ही अनन्य प्रीति की इच्छा प्रकट करते हैं ।[4] इस संसार से तरने का एकमात्र उपाय रामभक्ति के लिए भगवान् के चरणकमलों में अनुरक्ति पैदा होनी चाहिए अन्यथा यह सब विश्व मिथ्या है, झूठी आशा है ।[5]

सन्त नामदेव के ही शब्दों को दुहराते हुए से कबीर भी "भगति दुहेली राम की" कहते हुए प्रेम की साधना की कठिनता को "खाला का घर नाहि" कह स्पष्ट करते हैं । यहाँ तो आत्म त्याग की आवश्यकता है । उसमें प्रवेश पाने की पहली शर्त शीश उतार दहलीज पर रखना ।[6] यह साहसियों का

- -

1. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 26
2. पतिव्रता पति ही को जानै । नामदेव कहे हरि ताकी मानै ।।
   वही, पद- 26
3. वैस्नो मैं दोई नहीं नारद । प्रीति किया तै आऊं ।
   भगति हेत यौं प्रत धन्या है । वैस्नो हाथि बंधाऊं नारद ।
   वही, पद-95
4. ऐसे राम ऐसे हेरौ । राम छाडि चित्त अनत फेरौ ।
   ज्यूं विषई हेरे परनारी । कौडा डारत फिरै जुवारी ।
   ज्यूं पासा डारै पसवारा । सोना धड़ता हरे सोनारा ।।
   जब जाऊं तब तू ही रामा । चित्त चिपट्या प्रणवै नामा ।
   वही, पद-58
5. जोग न भोग मोह नहीं माया । का भयौ बन मैं वासा ।
   चरन कंवल अनुराग न उपजै । तब लगि झूठी आसा रे नर । वही, पद- 92
6. यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि ।
   सीस उतारै भुइ धरै, सो पैसे घर मांहि । कबीर ग्रन्थावली सूरा तन को अंग-सा-21

काम है कायरों का काम नहीं । प्रेम-पथ की बीहड़ता को तलवार की धार और "अग्नि की झाल" उपमाओं द्वारा अभिव्यक्त किया है ।[1] यह प्रेम क्रय विक्रय में नहीं मिलता ।[2]

कबीर की प्रेमभक्ति परिचायक सूरा तन को अंग, हेत प्रीति स्नेह को अंग, कामी नर को अंग आदि शीर्षकों के अन्तर्गत संकलित साखियों के अध्ययन से यह स्पष्ट लक्षित होता है कि उन्होंने इसका विस्तार से व्यापक वर्णन किया है और उनकी प्रेमभक्ति के आदर्श त्याग और तपस्या के प्रतीक सती और सूरा या शूर है ।

सती का प्रेम अनन्य प्रेम का द्योतक है और प्रेम पथ की कठिन साधना में भक्त को सूरा या शूरवीर की भान्ति जान हथेली पर लेकर घूमना पड़ता है । इसके अतिरिक्त परम्परागत चन्द्र-चकोर, भ्रमर-कमल, दीपक-पतंग, चातक-स्वाति आदि प्रेमादर्श प्रतीकों द्वारा प्रेम में एकनिष्ठ भाव की आवश्यकता पर बल दिया है । प्रेम को अनन्य भाव से निभाना महा कठिन व्यवहार है ।[3]

विरह प्रेम की जागृत गति है और मिलन सुषुप्ति है । प्रेम की परिपूर्णता और परिपक्वता के लिए विरह आवश्यक तत्व माना गया है । विरहानुभूति द्वारा ही आत्मा परमात्मा की ओर दृढ़ता से उन्मुख होती है । वास्तव में प्रेम का प्राणभूत तत्व विरह ही है । विरह में ही प्रेम साकार होता है ।

---

1. क - भगति दुहेली राम की, नहि कायर का काम ।
   सीस उतारे हथिकरि सो लेसी हरि नाम ।
   ख - भगति दुहेली राम की जैसे अगिनि की झाल ।
   ग - भगति दुहेली राम की, जैसे खाडे की धार ।
   कबीर ग्रन्थावली, साखी, 24, 25, 26
2. प्रेम न बाडी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय ।
   राजा परजा जिस रुचै सिर दे सो ले जाय । वही॰ साखी - 21
3. अगिनि आंच सहना सुगम, सुगम खड्ग की धार ।
   नेह निभावन एक रस, महाकठिन व्योहार ।
   कबीर ग्रन्थावली वचनावली - दोहा - 127.

राम के विरह में नामदेव की "तालाबेली" वैसी ही है जैसे पानी के बिना मीन, बछड़े के बिना गाय की दशा होती है । विरह की व्यग्रता के लिए "तालाबेली" शब्द नामदेव का ही विशिष्ट प्रयोग प्रतीत होता है ।[1] जन्म-जन्मांतर की प्रीति को वे भूलना नहीं चाहते । चातक-स्वाति, चन्दा व कुमुदिनी की स्वाभाविक प्रीति के समान नामदेव की प्रीति स्वाभाविक है । वे "वेदनि सहे रे" कह उसी वेदना की अनुभूति करते हैं और उस विरह-वेदना से उन्हें प्यार है ।[2]

कबीर के काव्य में प्रेम की मादकता, विरह की तीव्रता और मिलन की आतुरता के अनेकों भाव चित्र हैं । कबीर प्रेम को ही ईश्वर से साक्षात्कार का साधन मानते हैं, उस प्रेम रस को पीने पर उसकी खुमारी नहीं उतरती, मन और प्राण कभी अघाते नहीं ।[3] यह है उस प्रेम की मादकता का प्रभाव और उस रामभक्ति रूपी मदिरा की एक बूंद की प्राप्ति के लिए कबीर अपने सम्पूर्ण सत्कृत्यों को दलाली के रूप में देने को तैयार हैं ।[4]

सन्त कबीर ने आध्यात्मिक विरह के बड़े हृदयस्पर्शी चित्र उपस्थित किये हैं । विरह की पीड़ा अति अद्भुत होती है । विरह रूपी सर्प के शरीर में प्रवेश करने पर राम वियोगी जीवित ही नहीं रह सकता अन्यथा वह प्रेमदीवाना हो जीता है ।[5]

- -

1. पाणीया बिन मीन तलपै । ऐसे राम नाम बिन बापुरो नामा ।
तन लागिले तालाबेली । बछा बिन गाइ अकेली ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 59

2. लागी जनम-जनम की प्रीति, चित्त नहीं वीसरे रे ।
भरयो सरवर लहर धा जाइ, धायो नहीं पपीहरो रे ।
ते-ह्यौं घन बिन तृपति न थाइ, जौ वो तेन्हौ नेहरो रे ।
दोइ लख चन्दल दूरि कमोदिनि बिगसे रे ।
जनम नामदेव नो स्वामी दीनदयाल, ते वेदनि सहेरे । वही, पद- 136

3. हरिरस पीया जाणिये, कबहु न जाए खुमार ।
मैमंता घूमत रहै, नाहीं तन की सार । कबीर ग्रन्था०-रस को अंग-सा० 4

4. है कोई संत सहजसुख उपजै, जाको जप तप देऊ दलाली ।
एक बूंद भरि देइ रामरस, ज्यूं भरि देइ कलाली ।वही, पद- 155

5. विरह भुवंगम तन बसै मंत्र न लागै कोई ।
रामवियोगी ना जिये, जिये तो बौरा होई ।वही, विरह को अंग-साखी-18

कबीर की विरहात्मा उस अन्तर्यामी के दर्शन के लिए पन्थ निहार रही है ।[1] पथ निहारते निहारते नैनों की ज्योति मंद पड गई है, जीभ में छाले पड़ गये हैं ।[2] फिर भी वह सतत प्रियतम के विरह में ही जलना चाहती है अतः शरीर रूपी दीपक में प्राण रूपी बत्ती डालकर रक्त रूपी तेल से उसे ज्योतित रखना चाहते हैं ।[3] क्योंकि उन्हें पूर्ण विश्वास है कि इस तन को विरहाग्नि में जलाकर मसि बनाने पर उसका धुंआ स्वर्ग में जायेगा तब अवश्य ही राम दयाकर दर्शन देंगे ।[4] उनका इस तरह का वर्णन सूफी शैली से प्रभावित जान पड़ता है ।

- -

1• हो बलिया कब देखौगे तोहि -
अहनिस आतुर दरसन कारनि, ऐसी व्यापै, मोहि ।
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बांधै धीर ।
देह छता तुम्ह मिलहु कृपा करि, आरतिवंत कबीर ।
कबीर ग्रन्थावली, पद- 305

2• अंषड़ियां झाईं पड़ी, पंथ, निहारि निहारि ।
जीभड़ियां छाला पड़्या, राम पुकारि पुकारि ।
वही, विरह कौ अंग - साखी - 22

3• इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव ।
लोही सींचौ तेल ज्यूं, कब मुख देखौं पीव ।।
वही, साखी- 23

4• यह तन जालौं मसि करूं, ज्यूं धूंआं जाइ सरग्गि ।
मति वै राम दया करै बरसि बुझावै अग्गि ।
वही, साखी- 11

उनकी विरहिणी आत्मा अपने प्रियतम से मिलने के लिए आतुर है । नामदेव और कबीर दोनों ही "मैं बउरी मेरा राम भतारु" शब्दों द्वारा भी व्यक्त करते हैं । उन्हें लोक निन्दा व स्तुति की चिन्ता नहीं, वाद-विवाद से परे वे उस रामरसायन को पीना चाहते हैं ।[1] नामदेव अपने प्रेम प्रीति की स्याही से उस प्रियतम को पत्र लिख उनसे शीघ्र मिलना चाहते हैं ।[2] तो कबीर का प्रियतम तन मन में बस गया है उसे पत्र द्वारा क्या संदेश दिया जाए ?[3]

मिलन

कबीर ने आध्यात्मिक मिलन का वर्णन विवाह के रूपक में कितने मधुर व सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है ।

"दुलहिनी गावहु मंगलचार
हमारे घर आये हो राजाराम भतार ।"

- -

1. अ - मैं बउरी मेरा रामु भतारु
रचि रचि ताकउ करउं सिंगारु ।
भले निंदउ भले निंदउ लोगु ।
तनु मनु राम पिआरे जोगु ।
बादु विवादु काहू सिउ न कीजै । रसनारामु रसाइनु पीजै ।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद- 214
आ - भले नींदो भले नींदो भले नींदो लोग ।
तन मन राम पियारे जोग ।
मैं बौरी मेरे राम भरतार, ता कारनि रचि करौ स्यंगार ।
कबीर ग्रन्थावली - पद - 342

2. प्रीतम को पतियाँ लिखि भेजौं, प्रेम प्रीति मसिलाय ।
वेगि मिलौ जन नामदेव को जनम अकारथ जाय ।
संत नामदेव की हि. प. = पद- 230-6

3. प्रियतम को पतियाँ लिखूं जो कहीं होय विदेस ।
तन में मन में नैन में ताको कहा संदेस ।
कबीर ग्रन्थावली …वली - पाती - 126.

अब वे उस प्रियतम को नैनों की कोठरी में बन्द रखना चाहते हैं अब उनकी एकमात्र अभिलाषा है कि वे प्रिय ईश्वर के अतिरिक्त किसी को न देख सके ।[1] यही है उनकी अनन्य प्रेमभक्ति । अत: अखंड विश्वास से घोषित करते हैं कि भाग्य से ही प्रेम भक्ति की प्राप्ति होती है और बिना प्रेम के भक्ति कुछ भी नहीं है ।[2]

इस तरह कबीर ने प्रेम की लगन को ही अपना लक्ष्य माना है । कोई भी मध्यवर्ती साधन व्रत, पूजा, नमाज, तीर्थ, मन्दिर-मस्जिद, अवतार-वादी, पीर-पैगम्बर सभी को अस्वीकार कर दिया ।[3] नामदेव की तुलना में कबीर ने प्रेमभक्ति का विशाल और व्यापक स्वरूप उपस्थित किया है । उनकी भक्ति का साध्य और साधन दोनों ही प्रेम है ।[4] सन्त कबीर उसको "अकथ कहाणी प्रेम" की कह "गूंगे की शर्करा" की उपमा देते हुए उसको अनिर्वचनीय ही बताते हैं ।[5] नामदेव के काव्य में भी "राम गुड़ मीठा, जिन चाख्या तिन दीठा" द्वारा उसी भाव की अभिव्यक्ति हुई है ।[6] वैदिक प्राचीन साहित्य में भी ऋषियों ने उस परमानन्द को मूकास्वादन ~~कर~~ वत् कहा है ।

- -

1. नैना अन्तर आव तू, ज्यूं ही नैन झपेउं ।
   ना मै देखूं और कूं, ना तुझ देखन देउं ।
   कबीर ग्रन्थावली - निह कर्मी पतिव्रता कौ अंग - सा. २ ।
2. भाग बिना नहिं पाइये, प्रेम प्रीति की भक्त ।
   बिना प्रेम नहीं भक्ति कछु भक्ति भर्यो सब जक्त ।
   सत्य कबीर की साखी - पृ. 41
3. एक निरंजन अलह मेरा, हिन्दू तुरक दुहूं नहिं मेरा ।
   राखूं व्रत न मुहर्रम जानां, तिस ही सुमिरे जो रहे निदानां ।
   पूजा करूं न निमाज गुजारूं एक निराकार हिरदे नमस्कारूं ।
   ना हज जाऊं न तीरथ-पूजा एक पिछाण्यां तौ क्या दूजा
   कहै कबीर सब भरम भागा एक निरंजन सूं मन लागा ।कबीर ग्रं0 पद-338
4. डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 190
5. अकथ कहाणी प्रेम की, कछु कही न जाइ ।
   गूंगे केरी सरकरा, बैठे मुस्काई ।
   कबीर ग्रन्था0 = पृ. 156

कबीर की साधना का केन्द्र बिन्दु उनकी प्रेम से आपूरित अ आप्लावित भक्ति ही जिसे उनके शब्दों में "नारदी भांति भगन सरीरा" कह सकते हैं ।[1] उनकी प्रेमभक्ति में जहाँ एक ओर नारदी भक्ति का प्राधान्य है वहाँ दूसरी ओर वे सूफियों के इश्क से भी प्रभावित जान पड़ते हैं । कबीर के काल तक सूफी भक्ति धारा साहित्य में आ चुकी थी अत: सन्तों का भी उन सूफियों की भावदशा में पहुँचना स्वाभाविक है । अत: सूफियों की भक्ति के अनुभाव भी इन्हें हुये और किन्हीं क्षणों में उस मनोदशा में प्रविष्ट हो उसका वर्णन किया पर कबीर की प्रेमभक्ति सूफियों की देन नहीं कही जा सकती ।

सम्बन्धरूपा भक्ति की दृष्टि से नामदेव की प्रेमाभक्ति वात्सल्य रस से सिक्त है तो कबीर में माधुर्य भाव की प्रधानता है । इसके अतिरिक्त स्वामी-सेवक, ठाकुर-दास के दास्यभाव से भी अनेक स्थलों पर अपने प्रेम को व्यक्त किया है ।

संक्षेप

निष्कर्षत: यूँ कहना उचित होगा कि राम- प्रेम के दीवाने नामदेव और कबीर दोनों/ने ही भक्ति साधना में प्रेम को आवश्यक तत्त्व माना है पर नामदेव के काव्य में नाम तत्त्व मुखर है और कबीर में प्रेम तत्त्व । यद्यपि प्रेम की प्राप्ति नाम द्वारा ही होती है । नामतत्त्व साधना की अवस्था है, प्रयत्न की दशा है । नामदेव की दृष्टि प्रयत्न दशा पर अधिक केन्द्रित थी अत: उनका मन-नाम-तत्त्व वर्णन में रम गया और उस प्रयत्नदशा का वर्णन करते हुए वे संक्षेप में प्रेम-तत्त्व की ओर भी ध्यान दिलाते हैं । वास्तव में भक्ति में नाम तत्त्व ही मुखर होता है । प्रेम की प्राप्ति मौन है, जिन साधकों ने प्रेम का विस्तार से वर्णन किया है वे भी उसे अन्त में अनिर्वचनीय ही कहते हैं ।

---

1. कबीर ग्रन्थावली - पद 278

कबीर की प्रेम भक्ति के व्यापक स्वरूप को देखते हुए हम उन्हें डा॰ हजारीप्रसाद द्विवेदी के शब्दों में उन्हें "हिस्टीरिक प्रेमोन्माद" का परिपन्थी कह सकते हैं। पर नामदेव के काव्य में कबीर की भांति प्रेमोन्माद चित्र यत्र तत्र उपलब्ध होते हैं।

नामदेव और कबीर की भक्ति साधना को परमप्रेमरूपा नारदी भक्ति ही कहा जा सकता है। दोनों कवि प्रियतम के प्रेम के अडिग विश्वासी हैं, प्रेम की साधना को सहज लभ्य व्यापार नहीं मानते। दोनों की प्रेम-तत्व सम्बन्धी वर्णन में पूर्ण साम्य है। उन्होंने अटल विश्वास के साथ प्रेम मार्ग का प्रतिपादन किया।

भक्ति साधना की अन्तिम अवस्था है "प्रपत्ति"।

प्रपत्ति

प्रपत्ति ही प्रिय की प्राप्ति है। प्रपन्न भाव से हरि की शरण में जाना ही भक्ति की अन्तिम अवस्था है, अन्तिम सोपान है।

भक्ति के क्षेत्र में प्रपत्ति शब्द अनुग्रह या शरणागति के अर्थ में प्रयुक्त होता है। भक्त का सब धर्म और साधनों को छोड़कर भगवान् की शरण में जाना ही प्रपत्ति है। सभी भक्त और सन्त कवियों ने भक्ति में प्रपत्तिभाव को आवश्यक माना है।

नामदेव और कबीर की भक्ति भावना का प्राण प्रपत्ति है।

नामदेव भगवान से प्रार्थना करते हैं कि इस संसार में मेरा कोई संगी साथी मित्र नहीं, अतः वे हरि की शरण में आये हैं।[2] क्योंकि वही एकमात्र

---

1. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ॰ 208
2. नामा कहै मेरी देव न देवा, संग न साथी मीत लुला।
   तुम्हारी सरनि मैं भाजि दूर थी, बन्दि छोड़ि बाबा बीठुला।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 53

जन्म-मरण के बन्धन का मोचक है ।[1] भक्त को भगवान् की शरणागति प्राप्त होने पर किसी आचार व्यवहार, जप-पूजा आदि की आवश्यकता नहीं ।[2] अतः वे पूर्ण विश्वास से कहते हैं कि अब उन्हें पत्ती तोड़कर देव की पूजा की जरूरत नहीं । हरि की शरण में जाने पर ही भक्तों के सब बन्धन टूट जाते हैं वे बन्धनमुक्त हो जाते है । अब उन्हें पूर्ण भरोसा है कि उन्हें पुनर्जन्म नहीं लेना पड़ेगा ।[3] सन्त नामदेव के मत में प्रपत्ति ही मुक्ति का एक मात्र साधन है ।

कबीर भी नामदेव के शब्दों में ही भगवान् से अपनी शरण में रखने की प्रार्थना करते है ।[4] उस राम की अनिर्वचनीय गति को कोई नहीं जानता अब अन्त में भक्त कबीर "तेरी गति तू ही जाने कह भगवान् की शरणागति को अन्तिम उपाय मानते हैं ।[5] अन्य एक पद में उस दीनदयालु प्रभु की अनुकम्पा की याचना करते हुए शरण में लेने की प्रार्थना करते है । उन्होंने भी नामदेव के शब्दों में कहा है कि वही एकमात्र हमारे जन्म-मरण के बन्धनों को काटने में समर्थ है, अन्य कोई नहीं, अतः कबीर शरण में आये हैं । उन्हें पूर्ण विश्वास है कि दीनदयाल अवश्य ही उन्हें अपनी शरण में ले लेंगे ।[6]

- -

1. नामदेव कहै तेरी सरना, मेटि हमारे जन्म मरनां ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 53
2. आचार, ब्योहार जाप नहीं पूजा,
   ऐसो भगत आयो सरनिआ ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 132
3. पाती तोड़ि न पूजूं देवा । देवलि देव न होई ।
   नामा कहै मैं हरि की सरना । पुनरपि जन्म न होई ।
   वही, पद- 65
4. सन्त कबीर तेरी सरन आये, राखि लेहु भगवान ।
   कबीर ग्रन्थावली = पद- 301
5. तेरी गति तू ही जाने, कबीर तो तेरी सरनां । कबीर ग्रन्थावली-पद-21?
6. राखि लेहिं नाराइणा । प्रभु मेरी दीनदयाल दया करणीं ।
   x x x x x x x x
   सोचि बिचारि सब जग देख्या, कहूं न ऊबरणों
   कहै कबीर सरणाई आयो, मेटि जामण मरणां ।
   वही, पद- 248

सन्तों की ज्ञान-भक्ति

इनके साधनापक्ष की विशेषता यह है कि इन्होंने योग और भक्ति की प्रतिष्ठा ज्ञान के वितान में की है, अतः इनकी साधना में तीनों का समन्वय हुआ है पर उसमें भी ज्ञान इसलिए अधिक मुखर हुआ क्योंकि इन्होंने कहीं-कहीं ही प्रेम की सगुणता का स्पर्श किया है अतः इनकी भक्ति ज्ञानाश्रयी ही है । अलख और निर्गुण की भक्ति ज्ञान-भक्ति ही है । आलोच्य नामदेव और कबीर निर्गुण ब्रह्म के उपासक थे । उनकी ब्रह्म सम्बन्धी धारणा का विवेचन "ब्रह्म-दर्शन" शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है ।

जब मन रूप और सीमा को लांघ जाता है तभी ज्ञान-भक्ति में प्रविष्ट होता है । यही निर्गुण भक्ति है । यद्यपि सगुण भक्ति में भी प्रेम है, अनुराग है पर वह रूपानुराग है । सूर की गोपियां रूपानुरक्त है । निर्गुण भक्ति में रूपासक्ति नहीं । अलख के प्रति अनुराग ज्ञान द्वारा ही सम्भव है, अतः सन्तों की भक्ति ज्ञानाश्रयी भक्ति है ।

हमारे आलोच्य कवि नामदेव और कबीर नाम और प्रेम की महत्ता का गान करते हुए ज्ञान की गरिमा को स्वीकार करते हैं । सन्त नामदेव की स्पष्ट स्वीकारोक्ति है कि गुरु द्वारा दत्त ज्ञान रूपी अंजन से ही उनका जन्म सफल हुआ है ।[1] और उसी ज्ञानरूपी सरोवर में निमज्जन करने से ही उनके सब भ्रमों का सहज निराकरण हुआ है और तभी उन्हें

1. सफल जनमु मोकउ गुर कीना ।
   दुख बिसारि सुख अन्तरि लीना
   गिआन अंजन मोकउ गुरु दीना ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-204

निष्काम भक्ति के प्रतीक रामनाम के ज्ञान के द्वारा ही अद्वैतानुभूति हुई ।[1]

नामदेव की भान्ति कबीर भी सहज भ्रमों की निवृत्ति ज्ञान द्वारा ही मानते हैं । वे स्पष्ट कहते हैं कि ज्ञान की आँधी से भ्रम की टाटी नष्ट होकर उड़ गई, भ्रम के पूर्णतः नाश होने से ही मोह-माया और तृष्णा का बन्धन टूट गया, द्वैतभाव समाप्त हो गया । इस आँधी के पश्चात् वे प्रभु-भक्ति के प्रेमजल से सिक्त हो गये हैं और इस प्रकार ज्ञान रूपी सूर्य के उदित होते ही अज्ञानान्धकार क्षीण हो गया ।[2] वे ज्ञान और धर्म का अटूट सम्बन्ध बताते हुए दोनों को अन्योन्याश्रित मानते हैं ।[3] ज्ञान के बिना जन्म को ही निस्सार मानते हैं ।[4] इस प्रकार सन्तकवियों ने ज्ञान की सहायता से मन को स्वच्छ कर अहैतुक प्रेम की प्राप्ति को ही जीवन का लक्ष्य माना है । या दूसरे शब्दों में ज्ञान की उपलब्धि प्रभु भक्ति है ।

---

1. ग्यान सरोवर मंजन मंज्या, सहजै छूटिले भरमा
   नामा सगै राम बोलै, रामनाम निहकरमा ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-116
2. सन्तो, भाई आई ग्यान की आँधी रे ।
   भ्रम की टाटी सबै उड़ाणी, माया रहै न बाँधी ।
   हिति चित की द्वै थूंनी गिरांनी, मोह बलीडा तूटा ।
   त्रिस्ना छांनि परी धर ऊपरि, कुबुधि का भांडा फूटा ।
   x x x x x x x x
   आँधी पीछै जो जल बूठा, प्रेम हरि जन भींनां
   कहै कबीर भान के प्रगटे, उदित भया तमखीनां
   कबीर ग्रंथावली - पद- 16
3. जहाँ ज्ञान तँह धर्म है, जह झूठ तहाँ पाप
   कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट - सा॰ 176
4. बावरे तै ज्ञान विचार न पाया, बिरथा जन्म गंवाया ।
   कबीर ग्रंथावली, परिशिष्ट - पद- 112

सन्तों ने श्रुतिसम्मत वाममार्ग के शास्त्रीय स्वरूप को भी सहजीकरण सहज वैराग्य, सहज विचारणा, सहज समदृष्टि और नाम साधना से किया ।[1]

सन्तों के सहज वैराग्य से अभिप्राय नामदेव के शब्दों में "अभिअन्तर राता रहै,

बाहरि रहै उदास ।"

जग से विरक्ति और परमात्मा में अनुरक्ति से है[2]। कबीर के विचार में इसी अनुरक्ति से नामदेव सहज वैरागी हो गये ।[3] अन्तःकरण स्थित घट-घटवासी राम को कहीं बाहर जाकर ढूंढने की आवश्यकता नहीं ।[4] अतः उभय कवियों ने स्वधर्म का पालन करते हुए, सहज कर्म करते हुए भगवद् भक्ति में अनुरक्त अनासक्त कर्मयोगी के जीवन को ही सहज वैराग्य का आदर्श माना है । मन की इस वैराग्यपूर्ण स्थिति द्वारा ही समस्त इन्द्रियाँ परमात्मा के विचारों में निमग्न रहती है । विचारों की निमग्नता में ही साधक को सर्वत्र ब्रह्म के दर्शन होते है तभी समदृष्टि का विकास होता है । सहज ज्ञान की अखंड स्थिति समदर्शिता द्वारा ही प्राप्त होती है । इसी भावदशा में पहुँच नामदेव गा उठते हैं :-

"वैरागी रामहि गाऊँगा"

---

1. डा॰ गोविन्द त्रिगुणायत - हिन्दी की निर्गुण काव्यधारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठभूमि - पृ॰ 473
2. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - साखी, 3
3. नामदेव प्रीति नाराइण लागी ।
   सहज सुभाइ भए वैरागी ।।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-115
4. बनहि बसे क्यों पाइए । जो लौ मनहु न तजै विकार ।
   कबीर ग्रन्थावली - परिशिष्ट - पद- 147

वैरागी हो रामगुण गान करते हुए वे उस शब्दातीत, अनाहद या निर्गुण ब्रह्म में अनुरक्त उस "अकुला" के घर जाने की बात कहते हैं, अब उन्हें तीर्थाटन, जप-तप, पूजा-पाठ सभी बाह्याचार निरर्थक प्रतीत होता है। वे इस पिण्ड में ही ब्रह्माण्ड के दर्शन करने लगते है। केवल केशव का ध्यान करते हुए सहज समाधि के आनन्द की अनुभूति का वर्णन करने लगते हैं।[1] सहज ज्ञान द्वारा ही तो साधक सहज समाधि की स्थिति में पहुँचता है।

सन्तों के सहजीकृत ज्ञानमार्ग में नाम-ज्ञान के महत्व का विस्तार से गायन कर सन्त नामदेव ने सन्त साहित्य का बीजारोपण किया। इस का विस्तृत विवेचन "नाम-भक्ति" शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है।

इसी नामोपासना को परवर्ती सभी सन्त कवियों ने बड़े उत्साह से अपनाया। सन्त कवि गुलाल साहब नाम ज्ञान को ही सच्चा ज्ञान कहते हैं।[2] नाम-ज्ञान द्वारा ही नाम और नामी में द्वैतभाव का निराकरण हो जाता है और अद्वैतानुभूति होती है। सन्त चरणदास ने उसे अठारह पुराण और चार वेदों का साररूप कहकर उसे महामहिमशाली कहा है।[3]

- -

1. वैरागी रामहि गाऊँगा।
सबद अतीत अनाहद राता। अकुल के घरि जाऊँगा।
तीरथ जाउँ न जल में पैठूं। जीव जन्त न सताऊँगा।
अठसठि तीरथि गुरु लखाये। घट ही भीतर न्हाऊँगा।
पाती तोड़ि न पाहन पूजी। देवल देवन ध्याऊँगा।
पानि पानि परसोत्तम राता। ताकूँ मैं न सताऊँगा।।
नामदेव कहै मैं केसव ध्याऊँ। सहज समाधि लगाऊँगी।
सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद, 99
2. नाम न जानहु सत्य ज्ञान।, गुलालसाहब की बानी- पृ॰ 92
3. सबकी ऊँचा नाम है सब करनी की सीव।
अष्टादश वर चारि का मथिकरि काढ़ा घीव।
चरनदास की बानी, भाग- 2

भक्ति व योग से समन्वित और मुख्यतः इसी नाम-ध्यान पर आधारित है सन्तों की सहज साधना ।

सहज साधना

बौद्ध और सिद्धों की कठोर देह-दंडी कृच्छ साधना के विरोध में सन्तों द्वारा प्रवर्तित सरल साधना का सुगम मार्ग, सहज-साधना है । यह सहज शब्द परम्परागत है जिसे नाथों और सिद्धों ने अपनी साधना की विशिष्टता को प्रकट करने के लिए प्रयुक्त किया है । नाथों ने सहजशब्द का प्रयोग समरसता और स्वाभाविकता सहजज्ञान के लिए किया है ।[1]

सन्त साहित्य में सहज शब्द का प्रयोग कहीं परम्परागत नाथपन्थियों की तरह सहज समाधि के लिए किया है और कहीं सिद्धों के शून्यवत् सहज तत्व के लिए, पर उनका "सहज ब्रह्म" निर्गुण राम ही है, जिसे वह भक्ति के रंग में अवश्य रंगते है । वास्तव में सन्तों की सहज साधना उसी राम नाम की आराधना है, सहजयोग है ।

वास्तव में सहजसाधना की दृष्टि से सहजयोग से सन्तों का तात्पर्य मन का सहज रूप से ब्रह्म से योग या जुड़ जाना, लौ लगना है । राम नाम की लौ से ही तो भक्ति में दृढ़ता आती है और आत्मस्वरूप की प्रतीति होती है अतः नामदेव[1] और कबीर[2] उभय कवियों ने निष्काम भाव से राम-नाम स्मरण को ही सहज-साधना माना है । नामदेव "केवल ब्रह्म निकटि

---

1. जन नामदेव पायो नाव हरी ।
   जम आन कहा करिहे वौरे । अब मोरी छूटि परी ।।
   भाव भगति नानाविधि कीन्ही । फल का कौन करी ।
   केवल ब्रह्म निकटि ल्यौ लागी । मुक्ति कहा बपुरी ।।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद, 8
2. सहजै रामनाम ल्यौ लाई । रामनाम कहि भगति दिढ़ाई ।
   रामनाम जाका मन माना । तिन तौ निज सरूप पहिचाना ।
   कबीर ग्रन्थावली = सतपदी रमैणी = पृ० 227

ल्यौ लागी" कह और कबीर "सहजे रामनाम ल्यौ लाई" कह राम नाम की लौ में दृढ़ आस्था प्रकट करते हैं । और कबीर उस रामनाम को न छोड़ने के लिए कहते हैं क्योंकि राम-नाम स्मरण ही सहज-साधना है ।[1] और जब मन उस नाम के ही रूप में रंगकर तद्रूप बन जाता है । यही सहजावस्था है, सहज-समाधि है, मुक्तावस्था है । सहज ब्रह्म से तादात्म्य हो जाता है । इस सहज समाधि के लिए किसी साधना-कर्म की अपेक्षा नहीं ।

सन्त नामदेव निष्काम हो जिस सहज समाधि पहुंच गये हैं उसका चित्र कितना स्पष्ट है ।

अहंकार की समाप्ति पर ही यह आत्मा रूपी पतंग गगन में उड़ने लगती है तब आशा निराशा की भावना का नाश हो जाता है, कहना-सुनना समाप्त हो जाता है, तभी उस का परिचय प्राप्त होता है । उस प्रभु गुण के गायक और अगायक सभी इस नश्वर संसार से चले गये । वे प्रभु का गुण गान करते हुए सहज समाधि में मग्न रहना चाहते हैं ।[2] अन्य एक पद में वे कहते हैं कि न्यारे योगी ने सहज समाधि लगा कर निरंजन की सेवा की वह सेवा क्या है ? सहज साधना है योगी अपने चर्मचक्षु बन्द कर अन्तः चक्षु से देखने लगा, मन अन्तर्मुखी हो गया । निष्काम हो पंचेन्द्रियों के दासत्व से मुक्त हो गया तभी भक्त सहज समाधि में पहुंचता है ।[3] मन साधना की उत्कृष्ट अवस्था सहज समाधि है इसमें मन की सभी वृत्तियां अन्तर्मुखी हो जाती हैं ।[4]

---

1. कहि कबीर रामनाम न छोडौ। सहजै होइ सु होई रे ।
   कबीर ग्रन्थावली = सप्तपदी रमैणी - पद-15, पृ॰ 269
2. देवा गगन गुडी बैठी मैं नाही तब दीठी ।
   जब लगि आस निरास विचारै तब लगि ताहिन पावे ।
   कहिबौ सुनिबौ जब गत होइबौ तब ताहि परचौ आवै।
   गाये गये गये ते गाये अगई कू अब गाउं ।।
   प्रणवत नामा भए निहकामा, सहज समाधि लगाउं ।।सं॰ना॰की हि॰पद-पद66
3. जोगी जन न्यारा जुगे जुगि जीवै × × ×
   वांचिली मूंदिले मौचिली चौथिले पंच की आस मिटाई रे ।
   भणत नामदेव सेवि निरंजन सहज समाधि लगाइरे।सं॰ना॰की हि॰प॰-पद-67
   कोई जोगी या गम लहैला ।
4. अन्तर धुनि में मन विलमाऊं । कोई जोगी या गम लहैला ।
   सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली - पद-65

सन्त कबीर ने "सन्तो सहज समाधि भली" में विस्तार से सहज-साधना का स्वरूप स्पष्ट किया है । उसे "उनमनि रहनी" कहा है ।

इस सहज-साधना में तत्कालीन वैधीपूजा के स्थान भावात्मक पूजा का विधान किया है । अतः सन्तों ने सर्वत्र आत्मदेव की पूजा का ही उपदेश दिया है । नामदेव कहते हैं :-

"आतमदेव न पूजो" दगडा ।[1]

तो कबीर भी उसी आत्माराम की प्रेमभक्ति में झूलने की बात कहते हैं ।[2]

सन्तों की सहज साधना सहजयोग, नाम-स्मरण के अतिरिक्त सत्संगति और प्रपत्तिभाव भी महत्त्वपूर्ण अंग है जिन्हें दोनों ही कवियों ने स्वीकार किया है ।[3] साधु-संगति या सत्संगति द्वारा ब्रह्म प्राप्ति का मार्ग सहज बनता जाता है और प्रपत्तिभाव तो भक्ति का सहजतम रूप है ।

इस तरह सन्तों ने सहजीकरण की प्रवृत्ति से साधना के क्षेत्र में जिस सहजसाधना की प्रतिष्ठा की वह परम्परागत होते हुए भी सर्वथा मौलिक है । सन्तों की सहज-साधना की विशेषता यह है कि वह निरन्तर चलती रहती है इस सहज साधना का स्वरूप हमें सन्त नामदेव के काव्य में उपलब्ध होता है । इसी सहज साधना का विकास व विस्तार कबीर की वाणी में हुआ और यही साधना परवर्ती सन्तों द्वारा गृहीत हुई ।

उनकी सहजसाधना का लक्ष्य था परम सत्य की प्राप्ति ।

---

1. सन्त नामदेव की हिन्दी पदावली = पद- 47
2. हिंडोलना तहाँ झूले आतमराम,
   प्रेमभक्ति हिंडोलनाँ, सब सन्तान को विश्राम ।।
   कबीर ग्रन्थावली = पद- 18
3. देखिये - इसी अध्याय में साधु संगति और प्रपत्ति ।

भक्ति और ऐहिक कार्य की एकता

इनकी सहज साधना का लक्ष्य परमसत्य की प्राप्ति होने पर भी भक्ति और ऐहिक कार्य की एकता में उनका अटूट विश्वास था। उनके लिए हमेशा गीता का कर्मयोग ही आदर्श रूप था। भक्ति करते हुए वे कभी कर्म विमुख नहीं हुये। सन्तों ने श्रम और भक्ति को एक दूसरे का पूरक माना है क्योंकि श्रम से ही भक्ति सहज होती है और भक्ति से ही श्रम सहज हो जाता है अत: नामदेव भजन और दर्जी का काम, कबीर जुलाहे का काम करते हुए भक्ति, रैदास भजन व मोची का काम, सेनानाई भजन और नाई का काम साथ-साथ करते थे।

सन्त नामदेव कहते हैं कि मन रूपी गज तथा जिव्हा रूपी कैंची द्वारा राम में रमते हुए यम बन्धन को काट रहे हैं और कपड़ा रंगने और सिलने का काम करते हुए घड़ी भर के लिए भी भगवन्नाम विस्मृत नहीं करना चाहते।[1]

सन्त कबीर भी "धंधे में ध्याया नहीं" कह मनुष्यमात्र को चेतावनी देते हैं कि धन्धा करते हुए, अपना काम करते हुए ब्रह्म का ध्यान न करनेवालों का समूल नाश निश्चित है।[2] इस तरह दोनों ही कवियों ने अपने कर्मठ जीवन द्वारा कर्मयोगी भक्त का आदर्श समाज के समक्ष रखा।

भक्ति की धुन में कही गई "तनना बुनना तज्या कबीर, रामनाम लिख लिया शरीर" सन्त कबीर की ये पंक्तियाँ उनके कर्मत्याग या कर्म सन्यास की परिचायक नहीं, अपितु ज्ञानोत्तर ऐकान्तिक भक्ति की सूचक समझी जानी

---

1. मन मेरो गजु जिव्या मेरी काती। राम रमे काटो जम की फासी।
रागनि रांगऊ सीवन सीवऊ। राम नाम बिनु घरीअ न जीवऊ।।
श्री गुरु ग्रन्थ साहब - रागु आसा - पद-3
2. कबीर जे धंधे तौ धूलि, बिना धन्धे धूलि नहीं।
ते नर विनठे मूलि जिनि धंधे में ध्याया नहीं।
कबीर ग्रन्थावली - चितावणी कौ अंग - साखी - 21

चाहिए । अत: सन्तद्वय नामदेव और कबीर के जीवन का लक्ष्य भक्ति होने पर भी उन्होंने अपना सहज कर्म नहीं छोड़ा अपितु सदा भक्ति और दैहिक कार्य में एकता का ही समर्थन किया यही है उनके साधना पक्ष की विशेषता ।

निष्कर्ष

उपरोक्त विवेचन के प्रकाश में नामदेव को "नाम साधक" और कबीर को "परम-प्रेम का साधक" कह सकते हैं पर दोनों के नाम और प्रेम का लक्ष्य प्रेमात्मक ज्ञान है । प्रेम के अभाव में ज्ञान दर्शन शास्त्र ही बन जायेगा । यही उभय कवियों की साधना का मूलभूत अन्तर माना जा सकता है । इसका कारण सम्भवत: कबीर पर सूफियों की प्रेमपद्धति का प्रभाव कहा जा सकता है । कबीर के काल तक साहित्य पर सूफी प्रभाव पड़ने लगा था ।

तात्त्विक रूप से दोनों ही कवियों ने भक्ति साधना में प्रेम और नाम के महत्त्व को स्वीकार किया है । नामदेव ने नाम का विशाल और व्यापक स्वरूप उपस्थित किया तो कबीर ने प्रेम का । नामदेव राम-नाम के दीवाने थे तो कबीर राम के प्रेम के ।

अत: निष्कर्ष यह है कि हिन्दी सन्त काव्य को नाम-साधना की मौलिक देन नामदेव द्वारा दी गई । सन्त काव्य नाथ परम्परा की कड़ी है । नाथ योगियों की साधना मंत्र साधना थी, नाम साधना नहीं, उसे सन्तों ने अधिक सहज कर नाम भक्ति के रूप में प्रवर्तित किया इस भक्ति के प्रवर्तक है सन्त नामदेव [1] कालानुक्रम से सन्त कबीर से पूर्ववर्ती सन्त नामदेव के काव्य में नाम का विशाल व्यापक वर्णन इस बात की पुष्टि करता है । आचार्य क्षितिमोहन शर्मा के शब्दों में "उत्तर भारतीयों को सर्वप्रथम निर्गुण भक्ति का मधुर रसपान कराने का श्रेय महाराष्ट्रीय सन्त कवि नामदेव को है ।

---

1. आचार्य क्षितिमोहन शर्मा - साहित्य नया और पुराना, पृ. 164

सिद्धों और नाथों ने भक्तिविरहित निर्गुण मत का ही प्रचार किया था ।*1 और सन्त नामदेव ने उसे भक्ति से समन्वित किया ।

अन्त में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस निष्कर्ष को समीचीन मानते हुए कहना चाहेंगे कि "कबीर की वाणी वह लता है जो योग के क्षेत्र में भक्ति का बीज पड़ने से अंकुरित हुई थी ।"*2 और इस भक्ति बीज को अंकुरित करनेवाले थे सन्त नामदेव और उस निर्गुणभक्ति के मार्ग कोप्रशस्त करनेवाले थे सत्य साधक सन्त कबीर ।

---

1. आचार्य विनयमोहन शर्मा - साहित्य नया और पुराना - पृ. 164
2. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - कबीर - पृ. 161